में दावा'....पथ का दावा, दावेदार नहीं—दावा—'आमि दावानल-दाहन करिया विश्व, आमि जहन्नुमेर आगुने बशिया हांशी पुष्पेर हांशी'—पुष्पा (पुनः अन्तर्चेतना का अबाधित प्रवाह) पुष्पा या शमा ? या हेम....गाँव की बचपन की साथिनें, खेल, एकत्र अध्ययन...पुष्पा 'शरीर' थी....हेम आत्मा...परन्तु केशभूषा शमा की ही अच्छी थी; परन्तु हेम की साँवली मुद्रा में वे रसभीनी आँखें, मन्त्र-मुग्ध कर डालने वाले कामरूप के तांत्रिक का अज्ञात जादू मानो उनमें बसा हो...अब भी स्पष्ट याद है, वह बड़ी-बड़ी आँखों से ढुलक पड़ने वाले आँसू... और सच भी तो था; उसकी माँ को मुझे इस तरह डाँटना क्यों चाहिये था, उसे क्यों न बुरा लगा होगा; क्या मैंने कोई पाप किया था ? पाप... (सतर्क) देखें, अरविंद घोष पाप के सम्बन्ध में क्या कहते हैं ? सामने रखी हुई अरविंद की पुस्तक पढ़ने लगता है।

राजनीति के प्रोफेसर भिन्ना रहे हैं—'राजनीति का अर्थशास्त्र से चूँकि बहुत निकटतम सम्बन्ध है, जर्मनी ने अपने राइख़्टैग के विकास में आर्थिक नीति-निर्धारण को प्रमुख कार्यक्रम बनाकर डा० शाख़्ट....,

अविनाश फिर सोचने लगा—अर्थशास्त्र ? छिः अनर्थशास्त्र....यदि पैसा होता ही नहीं ? गाँधी, क्रोपाटकिन बाकुनिन—ठीक ही तो है, आदमी-आदमी का रिश्ता सीधा हो—उसमें पैसे की ओट क्यों जरूरी है ? परन्तु, परन्तु...(अन्तर्मन) यह सामने खिड़की से जो टेनिस-लॉन दिखाई दे रहा है, उस पर यह उद्धत रथीन बराबर खेले ही जा रहा है; 'मिक्स्ड डबल्स', वह ईसाई लड़की नई ही फँसी है, शायद थक गई है...हाँ, दोनों जाकर उत्तेजक पेय पियेंगे, परन्तु यह अनीता के बँगले के आसपास भी तो बहुत चक्कर काटता था....लोफ़र है.... अनीता ? रूप-गर्विता, बोर्जुआ....इन्हें तो अपने नृत्य-गीत से ही फुरसत नहीं है। इन्हें क्या पता है कि अग्रगामी दल क्या है, कृषक-प्रजापार्टी क्या है, जुगान्तर क्या है ?...ऐसी लड़कियों ने ही देश का दामन दागों से भर दिया है...और लड़के भी क्यों नहीं, मसलन ये

अभिन्द हैं—आर्टिस्ट बनते हैं साहब....आर्ट क्या? मन का धोखा है... फ्रायड ने इसे कुछ प्रवृत्तियों का स्थानान्तरीकरण (डिस्प्लेसमेंट) बतलाया है। परन्तु फ्रायड-पक्ष सत्य है। शायद सत्य स्वयम् एक पक्ष-सत्य है, उस विराट घटना का जिसे 'ऐतिहासिक अनिवार्यता' कह-कर परसों वह कामरेड कह रहा था।...काम खूब करता है वह कामरेड। परन्तु उसकी दृष्टि स्थूल भौतिकवाद...यानी इन्द्रिय-परायणता .. यानी—(सेंसर) परन्तु, गांधी 'आत्म-संयमन को ही स्वराज्य' मानते हैं, और अरविंद घोष और काली मैया ...

प्रोफेसर आगे कह रहे हैं—"दुनिया में प्रगतिशील और प्रतिक्रिया-वादी शक्तियों का संघर्ष चला है। क्षण-काल के लिए अंधेरा प्रकाश पर विजय पाता-सा दीखता है। परन्तु अन्ततः प्रगति ही विजयी हो रही है। जहाँ वैज्ञानिकता के नाम पर अंधविश्वास, सर्व-[illegible] के नाम पर वर्गहित, राष्ट्रीयता के नाम पर पूंजीवाद पोषण पाता है—उसे फ़ासिज़्म कहते हैं। यहाँ तक कि ये एक डंडे से सबको हांकने वाले, भेड़ियाधसान बढ़ाने के हिमायती, इन्सानी ज़हन को भी [illegible] लेना चाहते हैं। इटली में फैसिस्टों के 'आफ़ीशियल फ़िलासफ़र्स...'"

अविनाश यहाँ लेक्चर में ध्यान देने लगा, और इतर साधारण विद्यार्थियों की भांति अध्ययनोन्मुख हो गया।

आइये, अविनाश जहाँ रहता है, वहाँ उसका कमरा उसकी अनु-पस्थिति में देख आयें (वर्ना वह यदि साथ होगा तो इतनी बातें देखने नहीं देगा।) उससे शायद अविनाश का कुछ अधिक परिचय प्राप्त हो सकेगा। अविनाश कॉलिज के होस्टल में नहीं रहता। यानी रहना चाहकर भी नहीं रह पाता। क्योंकि उतना पैसा उसके पास नहीं है। वह देखिये कमरा खोलते ही आपको क्या दिखाई देगा—एक टूटा चप्पल उसके पैरों में थी ही—यह दूसरा पड़ा हुआ है, जो किसी खिलाड़ी का-सा जान पड़ता है। एक [illegible] बुझी हुई पड़ी है। एक कोने में [illegible] पड़े हैं, सामने आईना है। [illegible]

ज़रूर करता होगा। क्योंकि ब्रह्मचर्य का उसे व्यसन है। दीवालों पर विवेकानन्द, नेपोलियन और शायद तालस्ताय के फोटो लगे हैं। सामने काठ का तख्त-सा है। जिस पर चटाई बिछी है। कम्बल में लिपटा मुक़्तसिरसा उसका बिस्तर है। एक गेरुए कपास के खद्दर की चादर वहाँ अस्त-व्यस्त पड़ी है। सामने उसके अध्ययन की टेबुल है। शायद बिस्तरे के नीचे एक टीन की ट्रंक पड़ी है, जिस पर बंगाल के किसी दूरस्थ अन्तप्रदेश के ग्राम से कलकत्ते तक का रेलवे का लगेज-लेबल अभी भी चिपका है।

अविनाश के मन में झाँकने के लिए उसके टेबुल की सामग्री देखना पर्याप्त होगा। टेबुल पर सामने एक बड़ा-सा मिट्टी के तेल से जलने वाला दीया है; बहुत दिनों से जिसकी कांच की चिमनी साफ़ नहीं हुई है। पास ही एक अधजली मोमबत्ती और दियासलाई है। एक फूटे चीनी के कटोरे में सूखी-सी कमल की दो कलियाँ हैं। और कुछ किताबें हैं, जो भी बहुत अस्तव्यस्त प्रकार की हैं; कांट का 'प्रोलेगेमीना' है; मेज़िनी की आज़ादी-सम्बन्धी किताब है; डी वैलेरा का और कमाल-पाशा का जीवन चरित्र है; गांधीजी की अहिंसा पर कोई चर्चात्मक पुस्तक है; एल्डुस हक्स्लेका 'एण्ड्स एण्ड मीन्स' है; एक हस्तरेखा-विज्ञान की पुस्तक और अन्त में 'शरीर को सुगठित कैसे बनाया जाय?' इस पर एक सस्ती-सी किताब है। एकाध बंगला साप्ताहिक पड़ा है। कुछ कोरे, कुछ अधरंगे कागज़ात। और सामने जो सफ़ेद स्याहीसोख का लम्बा टुकड़ा है, उस पर कई अर्थशून्य आकृतियाँ और आंकड़े और नाम हैं। नमूने के तौर पर एक कोने में है :

त्रिकोण, वर्तुल, त्रिकोण—एक-दूसरे से जुड़े हुए। फिर √-१। इसके पीछे तीन उल्टे उद्गार-चिह्न, फिर... और जल्दी-जल्दी में किया हुआ हिसाब—

भोजन	१८-०-०	घर से क्या आया	०-०-०
सिनेमा	३-०-०	ट्यूशन से	१२-०-०

पोस्टेज, पुस्तकें	१०-०-०	लेखों से	१०-०-०
अन्य	१-०-०	मित्रों का ऋण	११-०-०

= भोजन कम करना होगा।

आत्म-संयम ∴ आत्मश्रद्धा ही स्वराज्य है। 'मनुष्य आवश्यकताओं की गठरी नहीं है। अर्थशास्त्र अनर्थशास्त्र है'—रस्किन।

matter is indest metible = अविनाश.... ?

शायद अविनाश का परिचय इतने से पर्याप्त हो गया होगा।

—कि चार बजे डाकिया एक पत्र घर में डाल जाता है। पत्र अविनाश के चाचा अर्द्धेन्दुशेखर जी का है। आशय:

'तुम्हारे परीक्षा के मार्क्स आये। तुम फेल हो गये। मुझे तुम से उम्मीद नहीं थी। तुम निकम्मे निकले। तुमने कुल की नाक काट डाली। तुम्हें आइन्दा पैसा नहीं भेजा जायगा। चाहे पढ़ो, चाहे भाड़ में जाओ।

'पुनश्च : पड़ोस के अहीन चौधरी की लड़की हेम, जिसकी परसाल शादी हुई थी, वह विधवा हो गई। विधना का लेखा!'

कहना नहीं होगा कि अविनाश कॉलिज से लौटा। उसने पत्र पढ़ा। उसे सदमा लगा। नित्य की भांति सार्वजनिक वाचनालय में वह अखबार पढ़ने नहीं गया। उलटे गीता के निष्काम कर्मयोग पर उस किसी विद्वान-साधु का भाष्य पढ़ने बैठा। और जब गया तब भूखे ही, जेब में बचे हुए बारह आने गिन कर शहर के किसी दूरस्थित कोने में लगा हुआ 'देवदास' फिल्म देखने, अकेले ही गया।

सवेरे जल्दी उठकर एक मील की दौड़ लगाते हुए अविनाश तालाब के पास उसी प्रकार प्रसन्न-चित्त अनिल से मिला। अनिल समझन बहुत देर से उठने वाला। शायद आदमी आज इतनी जल्दी यहाँ तालाब के किनारे क्यों आ गया, और कैसे, यह एक गम्भीर प्रश्न की बात थी, जिसका कारण कुछ भी हो सकता है। परन्तु

अमिय

अमिय कलाकार है। यानी संक्षेप में, वह सौन्दर्य-शोधक है। चित्र वह बनाता है; रवीन्द्र संगीत अलापने की कोशिश कर लेता है; नृत्य से भी उसे बेहद शौक है; और सुना गया है कि अनीतादेवी की 'स्टडी' में जो बर्नर्डशा का क्ले-मॉडेल (मिट्टी की मूरत) है, वह भी उसी की कुशल उंगलियों से बना हुआ है। अब शायद कोई ललित-कला नहीं बची जिसने अमिय की शरण न ली हो। हाँ, शरण ही कहें, क्योंकि वह इन बेचारी कलाओं पर अपनी बुद्धि से जो प्रेम करता था। वह एक प्रकार का अत्याचार ही था।

बची रही कविता। सो उस सम्बन्ध में भी अमिय की कोशिश जारी थी। और सुना जाता था कि वह अत्याधुनिक ढंग की कुछ ऐसी ही रचनाएँ सम्पादकों के पास भेज चुका था, जो कि छपनी सम्भव नहीं थीं (उदाहरणार्थ, उनमें एक पंक्ति लिखकर पूरी काटी गई थी, और रचयिता का आग्रह था कि वह वैसी ही कटी हुई छपे—यानी पंक्ति का या तो अलग से ब्लाक बनाया जाय, या दुबारा छपाई की जाय।)—अतः अमिय का कवित्व अप्रकाशित ही रहा था। वर्ना सब कोई जानते थे कि अमिय उच्चकोटि का कलाकार है; क्योंकि अक्सर जो समझ में नहीं आता, उसे ही उच्चकोटि का कहने का रिवाज़ कला के क्षेत्र में चल रहा है।

सो एवंगुण-विशिष्ट अमिय सेनगुप्त इतने सवेरे-सवेरे तालाब के किनारे आ गये थे उसका कारण स्पष्ट था। वे प्रकृति के सौन्दर्य को रंगों में बाँधना चाहते थे। वैसे प्राकृतिक दृश्यों के अंकन से उन्हें बेहद प्रेम था। कई जगह इसी दृष्टि से घूम चुके थे और जहाँ-जहाँ गये थे, वहाँ की याद को इन रंगों में (वाटर कलर में) कागज़ पर उतार लाये थे। हृषीकेश की गंगा में नाव से जाते हुए उस पार की पहाड़ों की [illegible] झाँकी की तस्वीर जैसे उनके पास थी; बम्बई के समुद्र के किनारे की लम्बी-चौड़ी रेत की पीली-गुलाबी रेखाएँ भी उनके स्केचिंग-फ्रेम में टँकी थीं। उनका स्केचिंग-फ्रेम क्या था, संक्षेप में जो दुनिया का सुन्दरतम रूप उन्होंने देखा था, उसके हरे-गुलाबीपन को उन्होंने उसके अंचल में संवार रखने का प्रयत्न किया था।

अमिय एक प्रकार से सौन्दर्यवादी कलाकार कहा जा सकता है और ऑस्कर वाइल्ड और वाल्टर पेटर के सौन्दर्यवाद सम्बन्धी समर्थन-तर्क उसने न भी पढ़े हों, फिर भी उसका सीधा-सादा [illegible] इस मामले में यही था :

दुनिया में दुःख बहुत है, गन्दगी बहुत है, सस्तापन बहुत है।

अतः कला के सौन्दर्यलोक में चलो जहाँ सुख-ही-सुख है; दुःख है भी तो वह सुख से समतुलित है; सब-कुछ साफ़-सुथरा, कला की [illegible] के अनुसार; राजसीय और समृद्ध है।

वहाँ कुछ कमी नहीं है, क्योंकि वह स्वप्नलोक है, कलाकार की 'आत्मा' की हाथी-दाँत की बुर्ज़ों से संरक्षित '[illegible]' है।

अविनाश को इसी बात से अमिय से चिढ़ है। अमिय के चित्र उसे अच्छे नहीं लगते हों, सो बात नहीं। उसके कई चित्रों में उसे एक मानो टर्नर और कॉन्स्टेबल के दर्शन हुए हैं। परन्तु वह कई बार अमिय से इस मामले में उलझ पड़ा है। उसने यह जानने की कोशिश की कि अमिय के राजनैतिक मत-सिद्धान्त क्या हैं। पता चला कि अमिय के कोई राजनैतिक निश्चित सिद्धान्त नहीं हैं। राजनीति से उसे [illegible]

क्या, उसमें अक्सूरी का उत्साह, सिम्की की मुद्राएँ, अना पावलोवा का पद्क्रमभंग है...इसाडोरा डंकन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि कैसे-कैसे राजनीति-विशारद और ब्रह्मविद्यापटु उसके चरणों की गति पर सर्वस्वार्पण करने पर उद्यत थे—रूप और अरूप की चर्चा व्यर्थ है। रूप प्रथम है...क्योंकि वह हमारे रक्त में अमिश्रित रूप में विद्यमान है...आज के युग की स्पर्श-शक्ति...और यह रंग तो मटियाला हो चला, वह धुँधले कुहरे का आभास कहाँ गया? नृत्य, चित्र और छन्द ...अमिय सेनगुप्त के जीवन की यह त्रिभंगी है!...

परन्तु इस सारी निर्द्वन्द्व कलाराधना का एक-दूसरा पहलू भी है। प्रतिमास बराबर नियमित तारीख़ पर जमींदार बाबू निखिल सेनगुप्त के घर से २००) का मनिआर्डर कॉलेज होस्टेल में अमिय के पास पहुँच जाता है। इसी के बल पर प्रति सप्ताह कमरे की सजावट बदलती है। फूलों के 'वाज़' बदलते हैं। दीवालों पर कभी अमृत शेरगिल और कभी गगनेन्द्रनाथ ठाकुर और कभी मनीषी दे की तस्वीरें बदलती हैं। और टूरंक में जब अंगार बराबर नहीं होता, नौकर को डाँटा जाता है, और कभी चोरी-चुपके नौकर की सिफारिश की हुई श्यामा के घर भी दौरा हो जाता है। पैसे की थैली सलामत रहे, ऐसी नयनाभिरामा श्यामाएँ तो हज़ार पैदा हो जाती हैं। जयदेव और विद्यापति के, बिहारी और पद्माकर की, मोपासाँ और फ्लाबेयर की सैकड़ों मांस-मुग्ध रस-सृष्टियों का प्रत्याख्यान हो जाता है।

कला अंततः काम है!

'...एक दिन कैलाश की देवदारु-द्रुम-वेदिका पर निर्वात, निष्कम्प प्रदीप की भाँति स्थिर-भाव से आसीन महादेव के सामने अपने ही यौवन भार से दबी हुई वसन्त-पुष्पों की आभरण-धारिणी पार्वती जब पुष्प-स्तबक के भार से झुकी हुई संचारिणी पल्लविनी लता की भाँति उपस्थित हुई थी और अपने नील अलकों में शोभायमान कर्णिकार तथा कानों में विराजमान नव-किसलय-दल को असावधानी से विस्रस्त

करती हुई उस तपस्वी के पद-प्रान्त में झुकी थीं, तो योगिराज क्षण-भर के लिए चंचल हो उठे थे, उन्होंने बरबस अपने विलोचनों को पार्वती के मयंक-मुख की ओर व्यापारित किया था, उन्होंने सारे संसार को क्षण-भर के लिए मधुमय देखा था। अशोक कन्धे पर से फूट पड़ा था, बकुल कंटकित हो गया था, न इसने सुन्दरियों के आशिंजित नूपुर-ध्वनि की प्रतीक्षा की, न किसी ने उसके गंडूषसेककी...

देवाधिदेव महादेव की यह मोहाकुलता कला है, जिसने कालिदास के कुमार सम्भव की शोभा बढ़ाई है।

और आदम और ईव के पतनपूर्व की और पतनोत्तर की वह गरिमामयी कहानी है, जिसने महाप्यूरिटन कवि मिल्टन के स्वर्ग के खोने और पाने के महाकाव्यों की वाणी को धार दी है।

'लौटो, सुन्दरी ईव, लौटो!'

'तुम किससे भागी जा रही हो? उससे, जिससे कि तुम बनी हो, उसके ही मांस और अस्थियों से निर्मित; तुम्हें अस्तित्व प्रदान करने के लिए तुम्हारे वक्ष में झुका; तुम्हें पाने का अर्थ था सारपूर्ण, सारे जीवन; ओ मेरी आत्मा के निजत्व के अंश में तुम्हें खोज रहा हूँ, तुम पर मेरा अधिकार है, ओ मेरी अर्द्धांगिनी...'

और वहाँ पतनोत्तर, जब कि नौवें भाग में (७८०-७८१ पंक्तियों में)

—यों कहकर, ईव ने उन अभागे क्षणों में अपने अधीर हाथ बढ़ाये, फल तक वे पहुँचे, फल तोड़ा और उसने चखा, धरित्री ने वह घाव अनुभव किया और प्रकृति ने अपना अधिष्ठान छोड़कर [illegible], ऐसे चिह्न सर्वत्र दीखे कि सर्वस्व जैसे खो गया, अपराधी सर्प झाड़ी में चुपचाप सरक गया, रेंग गया...वही आदम पतनोत्तर ईव में बना देखने लगा...

"मानो एक नई शराब से दोनों सराबोर हो, दोनों आनन्द के सागर में तैर रहे हैं और समझते हैं, कि उनके [illegible] देवत्व के [illegible] पंख फूट रहे हैं, जिनसे कि पृथ्वी को न-कुछ माना जाय, किन्तु वह निषिद्ध फल, पहले से ही कुछ दूसरा [illegible] [illegible] कर रहा है।

वह मांस-लुब्धता, शारीरिक वासना लहका रहा है। आदम ईव पर आसक्त दृष्टि डालने लगा, ईव ने उतनी ही निश्चितता से वह दृष्टि दुहराकर लौटाई।'

(पंक्तियाँ १००७-१५)

यह भी कला है!

कला नारी है!

नारी वह जो कि रवीन्द्रनाथ की उर्वशी के समान—'नह कन्या, नह माता, नह वधू, हे सुन्दरी रूपसी उर्वशी' है, जिसके 'डान हाते विषभांड, सुधापात्र वाम करे,' है, जिसकी मेखला के स्खलन-मात्र से लाखों विश्वामित्रों की तपस्याएँ गड़गड़ा पड़ती है! नारी वह जो कि,...

नारी वह जो कि क्लिओपाट्रा के समान रूपोद्धता प्रतिवासर नवीन प्रेमी को सर्पदंश करा कर मार डालनेवाली विषकन्या है।

नारी वह जो कि निश्चल, निस्पन्द, क्रियाशून्य लुटी-सी खड़ी है प्रतीक्षातुरा श्यामा के समान कि बाबू ने जो कुछ किया सो तो किया, पर बदले में नोट कितने मिलेंगे?

नारी वह जो कि कुलवधुका है फिर भी 'भूख और दारिद्र्य से पीड़ित होकर' दिन में ही अपने आपको बेच रही है। चोरी से नहीं; भोग से नहीं, (इन सब सभ्यता के अलंकारों के लिए, उन्हें कहाँ अवकाश?) किन्तु, केवल छः आने पैसे के लिए, जिससे वह रोटी भर खा सके ..

नारी वह जो कि आधी रात-भर सिलाई का काम करती है और एक दर्जन कमीज सीकर पाँच आने वेतन पाती है; उन फौजियों से 'जिन्हें अपने शरीर बेचकर उसके मूल्य में दो आने पैसे अतिरिक्त और कोई घातक रोग पाकर कृतज्ञ भी हो सकती है'...

कलित का मन न जाने कैसी-कैसी कल्पनाओं से सिचल आया। वह जल्दी-जल्दी होस्टल लौट गया। चित्र अधूरा ही रहा।

प्रकृति का चित्र भी उसने उतने रंगों से नहीं बना है जैसा कि

माना जाता है। कला और प्रकृति दोनों श्यामा हैं। 'श्यामा नयनाभिरामा कुसुम-सुषमा-रंजयिता सौन्दर्यधामा'...स्रग्धरा की ये भव्य पंक्तियाँ, और श्यामा के पैरों के खोटे चाँदी के बिछुए, आँखों की निर्लज्ज, ठिठकी, भावशून्य, निष्काम, पथराई पुतलियाँ। छिः छिः...

अलका की विरहिणी का सुरभियुक्त केश-संभार और ये सरसों के तेल से चिपचिपे, सड़ाँद लिये हुए ढीले जूड़े में बँधे बाल !

इन्हीं लावण्य की स्वप्निल आभा में रत-उज्ज्वल नीलमणिकार ने उस 'मधुमती भूमिका' को सार्थक कर कहा कि परकीया में ही 'परमोत्कर्ष। शृंगारस्य प्रतिष्ठितः।' और एक यह अमिय की काम-वृत्ति की कठपुतली है कि इसमें 'दुःखसर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्तयेत्।'...

अमिय ने साहित्य पढ़ा है। संस्कृत की काव्यतीर्थ परीक्षा दी। अंग्रेजी साहित्य का मर्मज्ञान पाया। परन्तु सन्तोष साहित्य में नहीं, कला में नहीं, श्यामा की पेशेवर रति में नहीं...

शायद अनीता रूपी कस्तूरी-मृग में हो। कला के माया-लोक में हो। शायद वहाँ भी न हो। परन्तु...

अनीता

अव्यभिचारी भक्ति और निष्काम प्रीति की बड़ी-बड़ी डींग कवियों और दार्शनिकों ने हाँकी है। परन्तु वह मृगजल से कम नहीं।

उदाहरणार्थ यह अनीता ही ले लो। नृत्य-संगीत में इसकी बराबरी करने वाली शायद ही दूसरी लड़की यूनिवर्सिटी में मिले, परन्तु यह छोटी किशोरिका इन सब निरर्थक शब्दों में पूर्ण विश्वास करती है।

अनीता को अपनी नृत्य-संगीतादि 'हॉबियों' से अधिक जानवरों के सम्बन्ध में पढ़ते रहने का भी शौक था। कई रंग की तितलियाँ उसने संग्रहीत की थीं, और उस का बस चलता तो एक पूरा पक्षी-संग्रहालय वह अपने उद्यान में बनाती। एक दिन वह कस्तूरी-मृग के सम्बन्ध में पढ़ रही थी...

—'कस्तूरीमृग की तिब्बती और नेपाली ये दो जातियाँ ही प्रख्यात हैं। मध्य एशिया की पर्वत श्रेणियों में, दक्षिण साइबेरिया, हिमालय में ८००० फीट की ऊँचाई के जंगलों में, जावा और सुमात्रा में ये पाये जाते हैं। साधारण बकरी की ऊँचाई के यह जानवर गर्मियों में गुफाओं में छिपे रहते हैं। सियाले में पर्वतों से नीचे उतर आते हैं। इन का शिकार बहुत कठिनाई से होता है। ये आदमी के पैरों की आहट से भागते हैं, चारों पैर पेट से सटाए, छलाँगें भरते हुए, बहुत द्रुत-गति से...'

अनीता भी पुरुषों से बहुत अंतर पर रहती है। उन से डरती है!

—'चट्टानों के टूटे-फूटे हिस्सों में ये मृग सहज-गति से भागते जाते हैं। पर्वतों से नीचे उतरते समय, उन पर दृष्टि स्थिर नहीं रह सकती! दिन-भर ये छिपे रहते हैं। रात को भक्ष्य ढूंढने निकलते हैं। ये नख से जमीन खोद कर वृक्षों के मूल खोज कर उन्हें खाते हैं। बिल खोद कर उन में से सांप निकाल कर उन्हें खाते हैं...'

बर्नर्ड शा के 'मैन एण्ड सुपरमैन' की भूमिका में नारी को शिकारिनी और पुरुष को भक्ष्य क्यों कहा है? वह नये तरुण प्रोफेसर जिस ने इस बात का उल्लेख कर, तूल देकर निरर्थक शा के स्त्री-दृष्टि-कृति पर भाषण किया—वह अनीता को एकदम नापसंद है। उसे क्या आवश्यकता है कि शापेनहार की भांति समय-असमय स्त्री-द्वेष का स्पष्टन करता है? वह आगे पढ़ने लगती है...

—'कस्तूरी-मृग जून या जुलाई में बच्चे जनते हैं। माता [illegible] दो बच्चे जनती है। वे दोनों बच्चे दूर-दूर रखे जाते हैं। स्वयं माता तीसरी ही जगह रहती है। सिर्फ उन्हें दूध पिलाने जाती है। दोनों बच्चे पास-पास तो शायद ही कभी आते हों। बच्चे मां को भी नहीं पहचानते। उन कस्तूरी-मृग के बच्चों को यदि किसी बकरी का दूध पिलाया जाय तो वे सहर्ष पी लेंगे। वे बच्चे बहुत मज़े से दूध पीते हैं। एक बार ऊँचे छलांग मारते हैं, एक घूंट दूध पिया, फिर दूसरी छलांग...'

अनीता के पतले अधरों पर एक खिन्न मुस्कान खिल गई। किताब से दृष्टि हटाकर दूर कहीं देखने लगी। दीवाल पर माता और शिशु का प्रेम अंकित करने वाला कोई चित्र था, वह उस चित्र की [illegible] प्रेम को जैसे फाड़-फाड़कर देखने लगी। उस की [illegible] आंखें चित्र के आरपार होकर जैसे दीवाल से टकराईं। और वहां से लौट गईं। और लौटती हुई, प्रति स्नेह-विश्वास पर जैसे [illegible] टटोलती हुई। [illegible] उस के जीवन की [illegible] थी, जिस पर उस का कोई वश नहीं चलता था, [illegible]

दीवाल की भाँति स्वतन्त्रता की राह में एक महाबाधा थी, जैसे हिमा-
लय की तराई का कस्तूरी मृग उस पार, कंचनजंघा के हिमाच्छादित
शिखरों के पार मानसरोवर की निर्मल, नीलोज्वल, जीवनधारा में अव-
गाहन, आप्लावन करना चाहता हो; जैसे कस्तूरी-मृगी कस्तूरी की
सुरभि से अंधी वनवनांतराल में उस सुरभि के स्रोत की टोह में पगली-
सी घूम रही हो; जैसे किसी अदृश्य, अदर्शित स्नेह-तंतु ने उसे सहसा उस
कस्तूरी-मृग-शावकिनी में परिवर्तित कर दिया हो, जो कि एक अजा के
सूखे, दुग्धशून्य स्तनों से निरर्थक उलझ रही हो, अपने सिर से टकरा-
हट मोल ले रही हो और बदले में पा रही हो अनवरत झिड़कियों की
झड़ी, जिस का की मोटा, कर्कश तीखा स्वर स्पष्टतः उसकी विमाता
[illegible] दीखता है...

पुनः उसने पढ़ने में मन लगाने का प्रयत्न किया...'कस्तूरी मृग
को जीते पकड़ने से कोई लाभ नहीं। वह पकड़ने से जल्दी अंधे हो
जाते हैं। कई पहाड़ी इलाकों और रियासतों में कस्तूरी-मृग सरकारी
सम्पत्ति के भाग होते हैं। उन्हें सरकारी हुक्म के बिना कोई मार नहीं
सकता। कस्तूरी-मृग का मांस स्वादिष्ट होता है...

—'कस्तूरी-मृग की नाभि के नीचे एक थैली होती है, जिस में कस्तूरी
संचित रहती है। उस की कीमत सोने के बराबर होती है। यदि यह
थैली निकाल ली जाय तो कस्तूरी-मृग मर जाता है।

—'कई शिकारी इस का बड़ी चतुरता से शिकार करते हैं। नेपाली
जाल बिछाकर इन्हें पकड़ते हैं; तातार और एशियाई रूसी इन्हें तीर-
कमानों से घायल करते हैं; तिब्बती कस्तूरी-मृग के छोटे बच्चे की सी
आवाज़ कर इसे पर्वत से मैदान में उतारते हैं...'

ऊर्मिला से आगे न पढ़ा गया। उस का बचपन से एक अंधविश्वास-
सा है कि जानवर और आदमी में बहुत कुछ समानता है। आज उसे
जैसे सबूत मिल गया।

फिर उस के अंतर्मन में न जाने क्यों दो बातें तैर गईं :

'नाभि के नीचे...' विद्यापति का एक पद उसने कहीं सुना था... 'सुरत क धन मोहि निधि महँ श्याम ?'...और कहीं उसने वह फ़ारसी कहावत पढ़ी थी कि 'इश्कारों व मुश्कारों' (प्रेम और कस्तूरी) अधिक काल तक छिपे नहीं रह सकते।

काम और कस्तूरी। दोनों अमूल्य, अगोपनीय, नाभि के नीचे मंजूषा में,...अनीता बहुत सोच में पड़ गई कि सहसा घड़ी ने सात बजाये। वह सोफ़े से जल्दी-जल्दी से उठी। संध्या-छाया घर में फैल गई थी। दीप जलाये। स्विच दबाते ही विद्युत जैसे सब कमरों में फैल गई। वह 'टाइलेट-रूम' में जाकर बड़े से आईने के सामने बैठकर शृंगार-प्रसाधन में जुट गई।

उसे नौ बजे से पहले-पहले आज संगीत-सम्मेलन में पहुँच जाना है। पिता (श्री प्रभातचंद्र दे, बार-एट-ला, [illegible] डिवीजन) छुट्टी पर कलकत्ते आये हैं। वे भी चलेंगे। [illegible] हो कि कादंबिनी और उन का लाड़ से बिगड़ा हुआ बच्चा [illegible] साथ में चलेगा।

संगीत में अनीता की रुचि है। संगीत से वह उतना ही [illegible] करती है, जैसे कोई कुरंगिनी। फिर वह तो कुरंगिनी नहीं है, [illegible] जा सकता है कि सु-रंगिनी हो है।) वह कस्तूरी-मृगी नहीं [illegible] चाहती है। वह नारी है, आधुनिक युग की; मादाम क्यूरी और [illegible] रूस पैसनेरिया, पर्ल बक और ग्रेटा गार्बो, सरोजिनी नायडू और [illegible] दास, ज़ोया और विजया-लक्ष्मी के युग की नारी। वह [illegible] नहीं है।

परन्तु संगीत सम्मेलन में जुटे मनचले कलाकार और [illegible] और [illegible], अनीतादेवी को 'मृगनैनी' ही मानते हैं। उन से [illegible] मात्रा में कम नहीं। इन के लिए वह क्या करे।

संगीत भी एक विचित्र प्रवंचना है। [illegible] 'ईश्वर' ने बिछा दिया हो।

थे कि अगर किराये के पैसे नहीं हैं तो आये क्यों कलकत्ते में पढ़ने.
कह कर स-सम्मान अविनाश चक्रवर्ती नामक एक विद्यार्थी को उन्होंने
अपने घर से निकाल दिया था। अनीता के भी अंतस्तल में कहीं
हलकी ठेस तब लगी थी। अविनाश नामक अज्ञात अपरिचित के
प्रति सहानुभूति इतनी नहीं जगी थी, जितना कि उन रिश्तेदार के
प्रति क्रोध। वैसे वे रिश्तेदार बड़े आदमी थे; पर सुना था उन्होंने
अपनी विवाहिता पत्नी के साथ अन्याय कर किसी सिनेमा-स्टार से
गठबन्धन कर लिया था; सुना था कि वे जुआरी हैं, शराबी हैं और
मक्कार हैं, सुना था कि......

दरवाज़े पर हाथापाई की नौबत आ गई। विद्यार्थी किसी को
अन्दर नहीं जाने दे रहे थे। अनीता का प्रस्ताव था कि उल्टे ही
लौट चला जाय। अनीता के पिता मामूली आदमी नहीं थे। मगर
पर इस प्रकार दिनदहाड़े पड़ने वाला डाका उनको असहनीय था।
वे तमतमा कर रह गये।

दरवाज़े पर जाकर उन्हों ने कहा—जानते हो मैं कौन हूँ?

"उत्तर मिला!"—होंगे भद्रलोग तो अपने घर रहिये।

कुछ कड़क कर दे बाबू ने कहा—"इसका परिणाम अच्छा नहीं
होगा। तुम एक उच्च पदाधिकारी का अपमान"......

अविनाश ने कहा—"परिणाम की चिंता करते हम कहीं नहीं जाते
हैं संगीत-सम्मेलन नहीं होगा—।"

उधर से एक बूढ़े बीनकार को सहारा देते हुए उन का एक शिष्य
धीरे-धीरे आ रहा था। उस ने आते ही चिल्लाना शुरू किया"—जाने
दो, जाने दो। उस्ताद बाबू क्यों आ रहे हैं।"

किसी विद्यार्थी ने कहा—"कोई हो या कोई हो। आज हम रहते
से कोई अंदर नहीं जाने पायेगा।"

बूढ़े कलाकार की आँखें कुछ चमकीं। उन्होंने हाथ में [illegible]
दे. कोई और हरी की टोपी से लटकने वाले सफेद [illegible]

हेम

हेम जब अपने मामा के साथ हावड़ा स्टेशन पर उतरी तब उस के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। चाँदपुर जिले के उस छोटे-से गाँव की दुनिया में और इस विराट महानगरी में (जिस से किसी समय नगरियों का पटरानीपन भी उपभोग्य है) कितना अन्तर था। अन्तर केवल आकार-प्रकार, जनसंख्या-बहुलता, अधिक व्यस्त कोलाहलपूर्णता में ही नहीं था, अन्तर तो कहीं मूल में ही था। गाँव की आत्मा में जैसे कोई घुन लगी हो, उस का प्राणस्रोत गँदला हो गया था। शहर में सब-कुछ लक-दक, साफ-सुथरा, चमकीला-भड़कीला जान पड़ता है। हेम के मन पर का वैधव्य का बोझ जैसे कुछ हल्का हुआ। उसने देखा कि यहाँ घूँघट और नम्रता और लज्जा से काम नहीं चलेगा। यहाँ की दुनिया ही दूसरी है। हेम के मन पर कलकत्ते का पहिला असर बहुत अच्छा हुआ, जैसे बच्चे को कोई नया खिलौना मिल गया हो, जो ऊपर से रंगीन हो और वह न जानता हो कि उस के भीतर कितना खोखलापन है।

हेम जनाने डिब्बे से उतरी, त्यों ही उस की उम्र से कुछ [illegible] वहाँ आ गया। सामान सँभाला गया। जब तक स्टेशन से बाहर निकल जाएँ तब तक बहुत देर तक रुकना पड़ा, एक तो आने-जाने वालों की भीड़ बहुत थी, दूसरी बात थी पैसेंजरों, टैक्सियों, की [illegible]

लेकर सांसों का बोझा ढोना है। वह हिन्दू समाज में पैदा हुई है। पराये मर्द की कल्पना भी उसके लिए वर्जित फल है। वैधव्य था एक टूटा हुआ पहाड़। सिकता के बड़े से फैलाव पर एक पत्थर ज्यों मारा हो। और वहां जाकर वह चुपचाप गिर गया हो, बिना कोई आवाज, परिणाम, क्षत, कुछ भी पैदा किये हुए। शिला-प्राय वह....

हावड़े का पुल आया। तब वह पुल हट रहा था। जल्दी जाने वाले नाव से जा रहे थे। हुगली के गेहुंए मटमैले जल में सारे शहर की व्यस्तता स्टीमरों के रूप में भागी जा रही थी। भीड़, रास्ता बन्द, एक पुल जैसी बड़ी सी चीज यांत्रिक गति से चुपचाप, सरकती हटती जा रही थी। (तो फिर वह वैधव्य की शिला, व्यक्तिगत बाधा, वह मन की प्रवंचना, वह संस्कारों के नागपाश....)।

हेम को पहली चीज जो कलकत्ते में बहुत आकर्षक जान पड़ी वह थी मनुष्य-जाति की अपार विविधता। वहां विचित्र पोशाकों वाले सभी जातियों के लोग थे। काले, तेलिया वर्ण के, अस्थिशेष, सफेद लुंगी और कमीज पहने, खुले सिर, मद्रासी थे; सांवले, हट्टे-कट्टे गांव की मछुओं की पोशाक पहने हुए असमियां थे; गोरी ठिंगनी, रेशमी लम्बे चोंगे टखनों से पिंडलियों तक पहनने वाली, नकटी, फूलदार छाते लिये बर्मी स्त्रियां थीं; गोलगप्पा मुंह, बुद्धू की सी शकल, आंख पर ऐनक, सिर नंगा, ढीली धोती, बगल में कागज़ का बस्ता, पैरों में स्लीपर डाले बंगाली बाबू थे; फिर अंग्रेजी वेश-भूषान्वित साहब भी थे, नये काट की ऊंची एड़ी के जूते पर बनारसी सिल्क की साड़ी, लिपस्टिक से लाल पाउडर-पुते मुंह और धूप का चश्मा पहनने वाली देशी, [illegible] मेमें भी थीं। और इन सब जनविशिष्टों की होड़ में तो एक विराट जनसमाज भी था, जिसमें कोई आकार, कोई रंग, कोई आकर्षक वैशिष्ट्य नहीं था, जिसे रिक्शे वाले, कुली, नौकर, दलाल, ठेला, खोंचेवाले, [illegible], मजदूर और न-जाने कितने नामों से पुकारा जाता है।

खजाने जैसी तिजोरी से, ये शहराती बैंकें अलग हैं। यहाँ सभ्यता है, संस्कृति या शराफत या क्या कहते हैं उसे नीति-रीति सब कुछ है। यहाँ रोगन है, पालिश है।

हेम ने कहा...."जैसे नागनाथ, वैसे साँपनाथ।...ये इतना सब पैसा सरकार इन्हें देती है मामा ?"

"नहीं तो"

"फिर सरकार इन से मिली हुई है, क्यों ? यही न ?"

मामा ने फिर सिर हिला दिया और कहा..."बेकार बकवास मत करो।" गठरी ठीक सम्भाले रहना। यह बड़ा शहर है। यहाँ देखते-देखते में चोरी हो जाया करती है। आँखों में धूल झोंकने वाले कई शरीफ बदमाश यहाँ घूमते रहते हैं। जरा सम्भल कर चलो।

फिर चुपचाप दोनों चलने लगे। दोनों ओर नजर नहीं ठहरती, ऐसे रंगीन चकाचौंधिया देने वाले प्रासाद खड़े हैं जिनमें तरह-तरह की वस्तुएँ सजाकर रखी गई हैं। शीशे के बड़े-बड़े घरों में साड़ियाँ, कहीं जूते, कहीं किताबें लगी हुई हैं। मानों मौन-निमंत्रण दे रहे हों— 'आओ हमें खरीदो। पर जेब गर्म है या नहीं?' यह वस्तुओं की वेश्यावृत्ति है। नीचे फुटपाथ पर उन चीजों की ओर एक नजर भी गौर न करने वाले नित्य के राही, अनवरत पंक्तों में चले जा रहे हैं— कोई दफ्तर की ओर, कोई दुकानों में, कोई मिलों से छूटकर जल्दी-जल्दी घर खाना खाने, कोई स्कूलों में, कोई कहीं। फुरसत यहाँ कहीं किसी को नहीं है। एक आदमी चलती हुई बस के नीचे आ जाता है। दो-चार निठल्ले बच्चे एकत्र हो जाते हैं। मगर फिर दो मिनट बाद बस धड़धड़ाती चली आ रही है। कोई मर या जिये, बला से। किसी को यहाँ रुकने और आँसू बहाने या मरहम-पट्टी करने की फुरसत नहीं है।

यहीं के दो कोटि इन वाहनों के स्वामी हैं, जैसे मिलों के दो पहिये इन मिलों वालों के। ये दो कोटि [illegible] के

बनते हैं. भारत में आने पर बड़ी-बड़ी संस्थायें उन्हें खरीदती हैं और अपने दफ्तरों में प्रतिष्ठित करती हैं। ये घड़ी की सुइयाँ कभी नहीं रुकतीं, चाहे चौराहे पर खड़े पुलिस के हाथ रुक जायं। घड़ी काल की प्रतीक है। काल की गिनती पहिले बालुकणों से करते थे। आज कल, चूँकि मानव अधिक सभ्य हो गया है स्वेदकणों से, श्रमकणों से यह गिनती की जाती है।

"बस आ ही गया। इसी मजदूरों के टोले में हमें चलना है।"

"मामा, भूख लग आई।"

"भूखे मरते थे इसी लिए तो कलकत्ते आये। वह इतनी जल्दी नहीं शांत होगी, हेम।'

'अब आगे नहीं चला जाता। तनिक सुस्ता लूं।' वह फुटपाथ पर छाया में एक मकान के बाहरी चबूतरे पर बैठ गई। स्वेद-कणों से मंडित उस का अरुणाभ मुख धूप के कारण तमतमा रहा था। रूखे केशों पर उसने मैली फटी-सी धोती पहन रखी थी। परन्तु बाल कैसे भी हों, रूप का उभार, छवि का अंगार, उस राख में छिप नहीं रहा था। रास्ते चलते हुए कोई उसे देखता तो किंचित-मात्र, सशंक, ठगा सा ही रह जाता था।

गठरी में से उसने चने और गुड़ निकाला। मामा को देना चाहा, उसने नहीं लिया। एक मुट्ठी-भर उसने मुंह में भर लिया। धीरे-धीरे चबाने लगी, और जैसे कई सुखस्मृतियां उसके मन में भूतों की तरह जाग उठीं। बचपन में अविनाश के साथ चोरी-चोरी खाए हुये समोसे, माँ के साथ थाली में एक साथ किया हुआ भोजन, विवाह के बाद पति की जूठन जो कि बलात् खानी ही पड़ती थी, वैधव्य के काल्पनिक संकट के उपरान्त वे उपवास, उन दिनों रात को उठकर चोरी से खाया हुआ देवता का प्रसाद, विवाह के समय फेंक दिए हुये मिष्ठान्न, और अब यह चने... कैसी छल देवता की विडम्बना है।

कि सहसा बहुत सा शोर-गुल जिस गली के किनारे हेम बैठी थी, उस से सटकर जाने वाली सड़क पर सुनाई दिया। हेम ने उचक कर देखा कोई बड़ा-सा जनसमूह जा रहा है। पहिले वह समझी कोई शादी की बरात है परन्तु वह नहीं थी। फिर उसने सोचा कि हो-न-हो प्रेतयात्रा है। परन्तु वहाँ अर्थी कोई नज़र नहीं आ रही थी। उसने दो ही बार जन-समूह इस प्रकार चलते देखे थे गाँव में,—या तो विवाह में, या प्रेत-यात्रा में।

भूँजा मुँह में अटका-सा रह गया था। वह जल्दी-जल्दी चबाने लगी कि उस की सविकल्प समाधि एक लट्ठ के पीतल के कुन्दे के तले को फर्श पर जोर से गिरना सुनकर टूटी। पीछे आँखों में विजया का अलस लगर भरे मूँछों पर मरोर देते हुए, सेठ जी के महा-दरबान नत्थू पाँडे मुस्कराते हुए खड़े थे। उमर उनकी काफी हो चुकी थी। बाल भी मखमल की टेढ़ी टोपी में से खिचड़ी नज़र आ रहे थे मगर दिल हरा था। अंचल ग्रस्ता हेम को देखकर उन के मुँह में जैसे पानी भर आया। उन्हें लगा कि वे गंगा-पार के बगीचे की कोई पकी अमिया की डाल ही देख रहे हों। हिन्दुस्तानी पंडाजी पहरेदार हुए तो क्या, कामदेव के बही-खाते में इसी कारण से उनका नाम नहीं लिखा गया हो सो नहीं।

उन्होंने आवाज़ को अत्यधिक मधुर बनाते हुए एक [illegible] वाली सम्बोधन से शुरू किया..."सारी [illegible] हो !"

हेम कुछ नहीं बोली। सकपका गई। आँचल सम्भाल, गठरी उठाये, चलने को हुई।

"ओ हो तुम तो रिसा चली, तुम तो गाँव की छोकरी हो। [illegible]रानी मेमों-सी लजाती..."

हेम की आँखों से स्फुलिंग से निकलने लगे, उसे यह [illegible] मज़ाक अप्रिय लग रहा था कि मामा नामक प्राणी ने पीछे से [illegible] कहा..."कुछ नहीं, हम मुसाफिर हैं, तनिक सुस्ता रहे थे।"

"तो यही जगह मिली क्या तुम्हें ?" अब वह [illegible] का द्विपाद स्वान गरजने लगा।

मामा ने गिड़गिड़ा कर माफ़ी भी माँगी और [illegible] चलने को उद्यत हुए कि एक नई मोटर की [illegible] वहाँ सरसराती हुई आ लगी (फुटपाथ के एक ओर) और उस में से एक तुंदिल-तनु [illegible], [illegible], [illegible], सिर पर बीकानेरी या जयपुरी या उसी तरह की कोई [illegible], [illegible]-

पीछे मुड़ कर सेठ ने देखा, सेक्रेटरी (एक छरहरे बदन का, चश्मिश, सूट-बूट वाला बाबू, जिस के चेहरे पर निर्विकार बदमाशी झलक रही थी) मोटर में से कागजात उठाने धरने में व्यस्त था; चुपके से सखू को कुछ हाथ से इशारा किया, जिसका अर्थ था जाओ, पीछा करो, माल अच्छा है। और सामने आते हुए मुनीम से कहा गया, आजकल नौकरानियाँ वैसे ही नहीं मिल रही हैं। ये कारखानों में सब चली जाती हैं। कल ही सेठानी जी ने...और अपनी सीता सावित्री-सी सेठानी के प्रति अपना राम या सत्यवान-सा मर्यादा-प्रतिष्ठित चिरंदिन का नाता पुनः प्रतिष्ठापित करने में सेठजी की मधुर वाणी संलग्न हो गई।

सैया बीस गज के फासले पर धीरे-धीरे जाते हुए मामा और हेम से मिला। मामा का पता पूछ लिया कि वे कहाँ रहते हैं। शाम को उन से मजदूरों की चाल में जाकर बातचीत की। हेम को सेठ के घर में नौकरी मिल गई। बच्चे खिलाना कुछ और दूसरी किस्म की टहल-चाकरी।

हेम के मन में बराबर यही प्रश्न काँटे-सा खटक रहा था...विनि-नाश का इतनी बड़ी भारी कलकत्ते की बस्ती में कैसे पता लगाया जायगा? परन्तु....

झक कपड़े, दाहिने नथुने पर भद्दा सा मस्सा, मोटे से ओठ और अभी-अभी बकरियाँ चर गई हों ऐसे खेत को मेंड़ सी मूँछें लिये सेठ लक्ष्मीचंद उतरे, हाथ की छड़ी जिसकी मूँठ चाँदी की नहीं, सोने की थी, सँभालते हुए वे मुख्य प्रवेश द्वार पर से जाने को ही थे कि तन कर सरयू पाँडे ने मिलटरी सैल्यूट देने का प्रयत्न किया...उस ओर न देखते हुए एक नज़र उन की हेम पर पड़ ही गई। हेम दूर थी, सिर फेर कर वह इस आलीशान कोठी के मालिक की ओर हक्की-बक्की सी देखरही थी।

मान लो, कि वह इस तरह मुड़ कर देखती ही नहीं। सेठ की मोटर बीस मिनट बाद आती और उन की दृष्टि उस निरीह ग्राम-कन्या पर पड़ती ही नहीं, तो फिर यह घटना क्यों घटित होती। यह कथानक तेजी कैसे पकड़ता और उपन्यास के कथानक में अगर आज का पाठक सिनेमा-सी तेज़ी न चाहे, तो फिर वह पाठक ही क्या? और सिनेमा में भी तेज़ी कहाँ होती है? एक हजार फीट तक वही रेंके हुए दुगाने; एक झील में हंस या बत्तक के पीछे दौड़ती हुई दूसरी हंसी या बत्तखिन; नायिका नाना प्रकार से झुककर, मुड़कर, अंगविक्षेप कर, फूलों को थपथपाती, डाली की पत्तियों को दाँत से कुरेदती इत्यादि-इत्यादि प्रकारों से लुभाने का प्रयत्न करती सी और फिर भी चवन्नी में बैठा हुआ दर्शक भी अनुत्तेजित-प्राय बीड़ी सुलगा लेता है, और उस निष्प्राण मांसल प्रदर्शन से आँखें फेरता सा, कर्कश यांत्रिक स्वरों की घरघराहट भुलाने का प्रयत्न करता, पड़ोस में बैठे हुए दोस्त से कहता है, 'यार यह भी फ़िल्म ऐसी ही रही। कुछ जंची नहीं। इससे तो 'पिस्तौल वाली' अच्छी थी।" तेज़ी-तेज़ी। यही आज के जीवन का सूत्र है। शराब की तेज़ी रेस के घोड़ों की तेज़ी में डुबाने की कोशिश होती है, बाजार की तेज़ी शराब की तेज़ी में भुलाई जाती है, असंतुष्टा पत्नी का तेज़ मिजाज शहर के बाजार की तेज़ आवाज में भुलाया जाता है...और यह परम्परा अखंड है!

परन्तु हेम की दृष्टि का तेज सेठ की आँखों ने जैसे भाँप लिया,

पीछे मुड़ कर सेठ ने देखा, सेक्रेटरी (एक छरहरे बदन का, चश्मिल, सूट-बूट वाला बाबू, जिस के चेहरे पर निर्विकार बदमाशी झलक रही थी) मोटर में से कागजात उठाने धरने में व्यस्त था; चुपके से सरजू को कुछ हाथ से इशारा किया, जिसका अर्थ था जाओ, पीछा करो, माल अच्छा है। और सामने आते हुए मुनीम से कहा गया, आजकल नौकरानियाँ वैसे ही नहीं मिल रही हैं। ये कारखानों में सब चली जाती हैं। कल ही सेठानी जी ने...और अपनी सीता सावित्री-सी सेठानी के प्रति अपना राम या सत्यवान-सा मर्यादा-प्रतिष्ठित चिरंतन का नाता पुनः प्रतिष्ठापित करने में सेठजी की मधुर वाणी संलग्न हो गई।

भैया बीस गज के फासले पर धीमे-धीमे जाते हुए मामा और हेम से मिला। मामा का पता पूछ लिया कि वे कहाँ रहते हैं। शाम को उन से मजदूरों की चाल में जाकर बातचीत की। हेम को सेठ के घर में नौकरी मिल गई। बच्चे खिलाना कुछ और दूसरी किस्म की टहल-चाकरी।

हेम के मन में बराबर यही प्रश्न काँटे-सा खटक रहा था...कालि-नाथ का इतनी बड़ी भारी कलकत्ते की धरती में कैसे पता लगाया जायगा? परन्तु....

सेठजी

सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी बड़े आदमी हैं। बड़प्पन वैसे उन का आकार-प्रकार की ऊँचाई में नहीं, चौड़ाई में थोड़ा-बहुत हो सकता है। परन्तु उन के बड़प्पन का सबूत मैं आपको अन्य प्रकार से भी दे सकता हूँ। इमर्सन ने कहा है कि....To be great is to be misunderstood सेठजी के सम्बन्ध में भी कम गलतफहमियाँ नगर-भर में प्रसृत नहीं हैं। जितना ही बड़ा आदमी होगा, उतनी ही उसके सम्बन्ध में अत्यधिक प्रशंसा और निन्दा आप को मिलेगी। मैं प्रशंसा से ही शुरू करता हूँ। उन का प्राइवेट सेक्रेटरी हरचरण छोड़ो, परन्तु अखिल प्रांतीय उपजाति महासभा के अत्यन्त निर्भीक, निस्पृह, और त्यागी महामन्त्री श्री अंजनीकुमार जैन से पूछ लो। वे उन की उदारता के अनेकानेक उदाहरण आपके सम्मुख प्रस्तुत करेंगे। बिहार के भूकम्प के समय सेठजी ने कैसे अपनी दौलत लुटा दी। (फिर भी एक कार-खाना खोलने लायक पूँजी बैंक में सुरक्षित पड़ी थी....उस के लिए बेचारे क्या करें, उनके पिताजी का वह पाप था, जो वे केन्द्रीभूत लक्ष्मी के रूप में छोड़ गये।) अगर आप को उपजाति-महासभा के महामन्त्री पर विश्वास न हो, तो गो-रक्षिणी-सभा और जीवदयामंडल के आनरेरी वाइस प्रेसिडेन्ट श्री खेमका से आप पूछ सकते हैं। सेठजी ने गये बीस बरस में आज तक चमड़े की जितनी भी चीजें (जूते, सूट-

केस, एटेची, घड़ी के कलाई बन्द से लगाकर हर्निया के बेल्ट तक) के इस्तेमाल की हैं, वे सब अहिंसक चमड़े की, यानी मारे हुए चमड़े की नहीं, मगर मरे हुए चमड़े की बनी हुई हैं। इन उच्चादर्शों का अक्षरशः प्रतिपालन सेठजी करते रहे हैं, यह बात आज श्री इन्दुभूषण अग्रवाल एम० ए० से पूछ सकते हैं, जो डेढ़ वर्ष तक उपजाति-महासभा के मुखपत्र 'महावीरोपासक' के सम्पादक रह चुके हैं। और जब सेठजी की तीसरी पत्नी मरी और उन्होंने यह चौथा विवाह सम्पन्न किया तब का, पुत्र के बिना कुलक्षय कैसे होता है आदि मनु-महाराज के वचनों से युक्त लिखा गया सम्पादकीय आप अवश्य पढ़ें। अगर इतने पर भी आप को विश्वास न होता तो 'घृताची' वेजिटेबल घी के कारखाने के मैनेजर श्री यामिनीकान्त मुखोपाध्याय का प्रश्रय [illegible] ले सकते हैं...सेठजी के 'सोशल नेचर' की तारीफ के पुल बाँध देंगे। आप कहेंगे कि इन सब महानुभावों की, जिनका नामोल्लेख मैंने ऊपर किया है, साँठ-गाँठ सेठजी से बनी हुई है, या सुधरी हुई भाषा में उन के 'न्यस्त स्वार्थ' सेठजी से सम्बद्ध हैं; परन्तु अब मैं जिन का नाम ले रहा हूँ, वे न तो सेठजी की जाति के हैं, न उन के कारोबार से उन का कोई सम्बन्ध ही है। उदाहरणार्थ श्री मुहम्मद अन्सारी, सम्पादक, प्रसिद्ध राष्ट्रीय दैनिक 'आजादी'; उन्हीं के बहुत ही घनिष्ट मित्र सम्पादकजी के नाम से प्रसिद्ध रामनारायणजी 'शर्मा' या [illegible]; या [illegible]जी जिन्हें सिवा संगीत के किसी चीज का शौक नहीं; या पिल्ले जो सिर्फ 'कथकली' को ही अपनी दुनिया मानते हैं। वे सेठजी को बड़ा क्यों मानने लगे, साहब ! जरूर उन में कुछ गुण होंगे। वैशेषिक-मीमांसा में कहा गया है कि बिना गुणों के गुणाधार सम्भव नहीं। तो अपने इस बड़े गुणाधार की बात आगे कहता हूँ।

कहते हैं कि जब देवासुर-संग्राम हुआ तब मेरु-पर्वत को [illegible] से मथकर (या मेरु सोने का होने के कारण इसे [illegible] [illegible] [illegible] का प्रतीक माना जाय, और [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]-

वर्गीय, दलित, प्रालतारियत) जो रत्न प्राप्त हुए, उन में से कुछ के नाम हैं लक्ष्मी, शंख, पारिजातिक, सुरा, अमृत, विष, उच्चैःश्रवा, लक्ष्मी और संगीत का कुछ इस प्रकार का सहजात सहोदरों का नाता कब से रहा है पता नहीं ? परन्तु शंखध्वनि और तीक्ष्णकर्णोंवाल घोड़ा जहाँ लक्ष्मी के सम्बन्धी हैं, वहाँ 'सुरा-अमृत-विष' का मिश्रण जिस कला में है....वह तुम्बूर और गन्धर्व की स्वर्गीय गानकला भी लक्ष्मी की सगी बहन है। और यह पौराणिक सत्य हो या न भी हो, सेठ लक्ष्मी-चन्द को संगीत बहुत प्रिय है। परन्तु आस्कर वाइल्ड के शब्दों में.... 'संगीत उन्हें उतना प्रिय नहीं था, जितनी संगीतकार।'

संक्षेप में, जहाँ मोहल्ले की कांग्रेस-कमेटी के वे एक प्रधान आधार और संगीत-सम्मेलन-बहिष्कार समिति को जहाँ उन्होंने पर्याप्त धन-सहायता एक ओर दी थी; वहीं वे संगीत-सम्मेलन के आयोजन की कार्यकारिणी के भी एक स्तम्भ थे, दूसरी ओर। परन्तु इस वर्ष उन का बहिष्कार में सक्रिय सहयोग देने का एक अन्य वैयक्तिक कारण भी था। जिस एक गायिका के सम्बन्ध में गत वर्ष उन के नाम के साथ कुछ 'स्कैंडिल' हो गया था और 'बाजार-गप' नामक साप्ताहिक के सम्पादक सत्यप्रिय को चुपके से रुपये नजर कर उन्हें 'हिश-हिश' कर सारा मामला चुपचुपाना पड़ा था, उस गायिका को सेठ लक्ष्मीचन्द के लाख आग्रह पर इस वर्ष संगीत -सम्मेलनवालों ने नहीं बुलाया था। तरुण कला-पारखी प्रेमचन्द बोले थे कि यह गायिका सिर्फ गज़ल-ठुमरी गाती है, उस के गाने में गान शास्त्र या शुद्ध-संगीत के कम दर्शन होते हैं। सत्यप्रिय कनखियों में हँसते हुए बोले थे—नहीं, साहब, जरूर बुलाइये। कुछ लोगों का दिल उन्हें देखकर ही ठंडा हो जाता है। शायद यह 'ठंडक' बहुमत को पसन्द नहीं थी—गायिका बुलाने का प्रस्ताव ठुकराया गया। सेठजी ने कार्यकारिणी से ऐन वक्त पर अपना नाम हटा लिया, और बहिष्कार समिति में योग दिया।

पर यह जो भी हो, संगीत-सम्मेलन, बाकायदा चाहे हो या न

हो, सेठजी के घर कलाकार मण्डली पहुँची और एक प्राइवेट, इन्फॉर्मल बैठक का आयोजन किया गया। उस रात लक्ष्मी, चन्द्रमा और सुरा के साथ-साथ सेठ की कोठी की चौथी मंजिल की चाँदनी पर तबले खड़क उठे, तानपूरे झनझनाये और वातावरण सहसा इमन और केदार से आर्द्र-मधुर हो आया। गानेवाले, बजानेवाले भी मशहूर थे। सुरा भी काफी ऊँची थी।

रात के चार बजे तक यह ठाठ चलता रहा। मेहमान धीरे-धीरे विदा लेने लगे, तब सुरा और काम से उन्मत्त सेठ 'सब अतिथि जब गये' यह जानकर किसी अन्य दुष्कर्म की पूर्ति में संलग्न हो गये। वह दुष्कर्म था, कोठी के एक ओर भैया सरयू पाँडे की, [illegible] एक ओर की एकांत कोठरी में बड़ी रात तक काम-काज [illegible] घर लौटती हुई हेम को पकड़ कर जहाँ बन्द कर दिया था [illegible] चिल्लाये नहीं इसलिए मुँह में कपड़ा ठूँसकर, हाथ-पैर [illegible] गठरी की भाँति एक ओर डाल दिया था—उस [illegible] के नामी-गिरामी सेठ लक्ष्मीचन्द का बलात्कार का [illegible]। [illegible] की झिलमिली खुली। मोटर-ड्राइवर एक ओर हो गया। सेठ [illegible] खड़ाते उतरे। मिट्टी के तेल की ढिबरी अन्दर एक ओर उजाला [illegible] भैया और सेठ की इशारों में बातचीत हुई—

"सब ठीक ?"

"सब ठीक।"

चीख। अन्धकार। सुनसान बगीचे के एक कोने से उल्लू चीख उठा, मानों यह याद दिलाने के लिए कि यह भी लक्ष्मी से किसी प्रकार से सम्बन्धित है।

शेषशायी भगवान विष्णु जो कि इस ब्रह्मांड के सूत्र-चालक हैं, लक्ष्मी के हाथों पैर दबवाकर देवशयनी तक खुर्राटे भर रहे हैं। हेम की करुणा-कातर पुकार में उन्हें द्रौपदी या अहल्या या और किसी की याद नहीं आती। विष्णु भगवान की 'शिवलरी' अब बीसवीं सदी में आकर ठंडी, निश्चेष्ट हो गयी है। गजेन्द्र और सरीसृप और शिलाखंडों तक के उद्धार में व्यस्त-चिरोद्यत ईश्वर इन क्षणों में गाढ़निद्रा में है। कोई चमत्कार घटित नहीं होता। दुनिया बराबर चल रही है—पौ में पीलापन फूटने को है, तुलसीदास द्वारा बखानी हुई प्रेतनी पिशाचिनी सी ऊषा वहाँ अरुणरक्त पान में निरत है। सबेरे-सबेरे अखबार बेचने वाले 'आजादी—दो पैसा, आजादी—दो पैसा।' —अमुक शहर में फौजियों द्वारा स्त्रियों पर किया हुआ अत्याचार, पैदल सत्याग्रही दिल्ली जाकर भी गिरफ्तार नहीं किया गया—'आजादी—दो पैसा' चिल्ला रहा है; दूधवाले बर्तन खड़-खड़ाते चल दिये; दूर की फैक्टरी से अध-भरी रोती-सी मिल-बन्द की आवाज आ रही है; मामा रतजगे के बाद फैक्टरी से थके यंत्र की भाँति घर लौटता है, हेम को वहाँ नहीं पाता। कुछ घबड़ाता-चिंतित हो जाता है, फिर सो जाता है।

महीने सरकते चले जाते हैं।

उधर सेठ का क्या होता है? कुछ भी नहीं होता। बलात्कारी से कुछ विजयश्री, कुछ आह्लाद-सा उपलब्ध कर, फिर मोटर के ऊष्मायुक्त गद्दे—घर पर विश्राम—फिर 'बिजिनेस' का चक्कर चालू! वह जीवन-वस्त्र पर ज़रा-सी सलवट, वह एक हलका सा दाग, वह एक घटना मन से भुला दी गयी है—क्योंकि ऐसी कई घटनाएँ पहले भुला दी जा चुकी हैं। सेठजी का विश्वास है कि

ये और ऐसी सब युवतियाँ उन के सुखोपभोग के लिए पैदा हुई हैं। उन्हें कृतज्ञ होना चाहिए कि एवज़ में वह उन्हें रुपये दे देते हैं। और लोग तो वह भी नहीं देते। इस प्रकार बलात्कार करा लेना जैसे इस वर्ग की अनाथा, दरिद्रा, रूपवतियों का जन्मसिद्ध अधिकार है।

शेयर-मार्केट से लगकर, स्टाक-एक्सचेंज की बिल्डिंग के पास सेठ जी की बड़ी 'फर्म' है। उसकी तीसरी मंजिल पर 'लिफ्ट' रुकी। और एक आपादमस्तक खद्दरान्वित महानुभाव उतरे। उन्होंने अपना मोटा-सा बैग संभाला और विज़िटिंग कार्ड चपरासी को दिया। थोड़ी देर बाद वे सेठजी के खास दफ्तर में दाखिल हो गये। सेठजी अन्दर नहीं थे। हाँ, उन के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री [illegible] जी मौजूद थे। जान पड़ता है कि इस क्लीन-शेवन, काली फ्रेम का मोटा चश्मा पहने हुए खद्दरपोश का इस सेक्रेटरी नामक व्यक्ति से पुराना घरोप है। तभी तो इतनी घुट-घुटकर बातें हो रही थीं। सो, अंग्रेजी में, और निहायत लच्छेदार और सुन्दर भाषा में हो रही थीं। उस की कुछ बानगी...

सेक्रेटरी—मेरे मत से, आप कांग्रेस वालों ने बेहद गलत ढंग इस बना लिया है। युद्ध से विरोध ठानने का मतलब एक पक्की दीवार से सिर फोड़ लेना है। अहिंसा कभी-कभी जो हिंसक रूप धारण कर लेती है कि...

साथ ही चलते हों, ऐसा अबाधित नियम तो नहीं। फिर नीति क्या और अनीति क्या? यह प्रश्न भी कम रोचक नहीं।

"खैर नीति-शास्त्र-चर्चा के लिए इस समय मुझे अवकाश नहीं। सेठजी कब तक आ जावेंगे?"

"क्यों आज कुछ विशेष कार्य है?"

"नहीं उन का विज्ञापन मुझे मिलने वाला था। और यदि उन की ओर से कोई सफाई नहीं आयी, तो आगामी 'चन्दन' में आप देख लेना कि सेठजी की संगीत-गोष्ठी के फोटो छप जायंगे। समझे आप? यह धमकी नहीं। मेरे पास फोटो मौजूद हैं।"

"आप एकदम इतने आपे से बाहर क्यों हो रहे हैं? वह सफाई वगैरह सब हो जायगी। आप निश्चिंत रहिए—कल तक दोनों पृष्ठों का कवर वाला विज्ञापन और वह आपको लेखन सहायता के पुराने चेक—वही जातीय-सम्मेलन में सेठानी जी के दिये हुए भाषण की लिखाई का चेक—आपको मिल जायगा। और कुछ मेरे योग्य सेवा?"

"कुछ नहीं, ये कार्य परसों तक अवश्य हो जाने चाहिए। साप्ताहिक 'चन्दन' के विशेषांक का मैटर परसों तक जाने वाला है। वर्ना सेठजी को समझा दीजिये कि मुँह दिखाने लायक जगह नहीं रहेगी।"

"बात यह है कि काम की मुस्तैदी और महत्व का क्रम हम बिज़िनेसवाले अधिक अच्छी तरह समझते हैं। आप उस ओर से बेफिक्र हो जाइए। और बात सुनाइए। आजकल आप के प्रसिद्ध सिने-तारका इरा से कैसे सम्बन्ध हैं?

कुछ मुस्कराकर "वह सब प्राइवेट बातें हैं, शाम को क्लब में होंगी। मैं यहाँ तो अपने पत्र के सम्बन्ध में आया था। काम हो गया। अच्छा तो गुड-डे!"

इतने में टेलीफोन की घण्टी बजी। रिसीवर उठाकर सेक्रेटरी ने बात करनी शुरू की—"कौन, नेताबाबू? नमस्ते, नमस्ते, वंदेमातरम्... कहिये, क्या आज्ञा है?...स्वयंसेवकों के लिए...जी-जी, यह भी क्या

कहना है...हम लोग तो आप ही के हैं...मगर उस जूट मिल की बात न कीजिए, वहाँ के लोग हैं ही शरारती...हड़ताल नहीं करते, कहते हैं काम करने का हमें हक है...भाई उन से कहो, उनका दोस्त रूस भी तो इस वक्त हिटलर से अनाक्रमण अभिसंधि से मिला हुआ है।...अच्छा, अवश्य, सेठजी के आते ही उनसे कह दूंगा...योगीजी का क्या नाम बताया ? अद्वैतानन्द ? अवश्य दर्शनार्थ उपस्थित होंगे।...

खद्दरपोश नवागंतुक सम्पादक 'चन्दन' चले गये थे। टेलीफोन बन्द हो गया था। सेठजी अभी आये नहीं थे। भैया रामू पांडे [illegible] खड़े थे—उन्होंने दरख्वास्त भेजी थी—"सेठजी, आप [illegible] इनाम न मिलिहैं, तो हमार छुट्टी कर देव।"

सेठजी हड़बड़ाते हुए आये। सब सुना। भैया को [illegible] रुपये देने को कहा। चन्दन वालों के नाम पांच सौ का चेक लिखा था, उस पर हस्ताक्षर कर दिये। अमरीका के विश्व व्यापारी-संघ [illegible] गड़ाते हुए बोले—"हाँ जी, नेता बाबू ने क्या [illegible] कहा था?"

साथ उसका वह संरक्षक-सा चाचा जो रहता है। फिर उन्होंने दराज़ खोला—चेकबुक पर चेकबुक दिखाई दे रहे थे। टेबुल पर रखी लक्ष्मीजी की तस्वीर को उन्होंने प्रणाम किया, और मिठाई खाते हुए—कोट के अन्दर की जेब से एक फोटो निकालकर वे उससे मौन प्रेमालाप करने लगे। निश्चय वह छाया-चित्र किसी अन्य ईव की बेटी का था, जिसके भाग्य में हेम होना लिखा था।

सेठ लक्ष्मीचन्द का कारोबार अंतर्राष्ट्रीय था। उनके द्रव्य-संग्रह की नींव के पत्थर कई बैंकों में थे, जो सोने की ईंटों से बने थे। और जब तक यह सब सुरक्षित था, तब तक किसी मनु या मूसा की, नीतिशास्त्री या उपदेशक की हिम्मत नहीं थी कि वह सेठ के बारे में ऐसी-वैसी बातें करे; या किसी भी तरह उन्हें दुर्गुणी कहे। हेम के शाप से सेठ नहीं मरा करते। हेम का अर्थ है सोना, वह जब तक मुट्ठी में है, तब तक ऐसी अनेकों हेमांगिनियों को क्षणों में अर्द्धांगिनी और अनंगिनी बनाया जा सकता था।

और शाम को वे प्रवचन में पहुँचे।

निष्काम कर्मयोग ही गीता का प्रतिपाद्य है। दूसरे अध्याय में भगवान कहते हैं—'मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि।' शंकराचार्य भाष्य करते हैं—'कर्मण्येवाधिकारस्ते न ज्ञाननिष्ठायां ते वे। तत्र च कर्म कुर्वतो मा फलेष्वधिकारोस्तु कर्मफलतृष्णा मा भूत, कदाचन कस्यांचिदवस्थायामित्यर्थः। यदा कर्मफले तृष्णा ते स्यात्तदा कर्मफलप्राप्तेर्हेतुः स्याः एवं मा कर्मफलहेतुर्भूः यदाहि कर्मफलतृष्णाप्रयुक्तः कर्मणि प्रवर्तते तदा कर्म फलस्यैव जन्मनोहेतुर्भवेत्। यदि कर्मफलं नेष्यते किं कर्मणा दुःखरूपेणेति मा ते तव संगोस्त्वकर्मण्य करणेप्रीतिर्माभूत्॥'

अर्थात् कर्म करो, परन्तु फल की आशा न रखो। यदि कर्म सकाम होगा तो कर्तृत्व का अहंकार तुम में आ जायगा, अहंकार से जन्म-मरण का फेरा लग जायगा। अतः काम तो करो, मगर काम का परि-

णाम न देखो । सब कुछ परमेश्वरार्पण बुद्धि से करो । जैसे मजदूर है । वह मजदूरी के लिए मजदूरी न करे । कर्तव्यबुद्धि से श्रम करे । फल तो उसे मिल ही जायगा । वैसे ही सेठ है । वह वणिग्वृत्ति में जीव अटका कर व्यापार न करे । जैसे कहा है—दाँव लगाते हैं । फल की आशा वहाँ है, पर बहुत बार नहीं भी मिलता । इसी से सट्टा करो, तो भी भगवान् को अर्पण करने की बुद्धि से । तो यह आसक्ति जो है, [illegible] है । इसी से दुख है । मोह ही नहीं हो तो दुख कहाँ से हो ?......

स्वामी अद्वैतानन्द जी का प्रवचन धारा-प्रवाह चल रहा है । वे कामदेव की कहानी रसपूर्ण शैली से सुनाते हैं कि कैसे वह कुबेर बन गया, आदि...सेठ लक्ष्मीचन्द, भी श्रोताओं में से एक हैं । उन के अन्तर्मन में द्वन्द्व चल रहा है—'तो मैंने प्रेम से पाप किया, पर कोई पाप न हुआ । मैंने कर्म किया, उस का परिणाम मुझे नहीं [illegible], ठीक ही तो है । उसने भी कर्म किया, उसे पैसे की जरूरत थी ...!

'पर यह पैसे की ज़रूरत कैसे पैदा हुई ? इस में भी भगवान् की कोई लीला ही है । पैसा उसी के लिए ज़रूरी है जो कि उस का दास है । जो उस का स्वामी है, उसे परवा है ? पैसा आप से आप उसके पास चला आता है । प्रवचन आगे चल रहा था । [illegible] बीच-बीच में हो जाती थी । अद्भुत दृश्य था । [illegible] भित था । व्यास-पीठ पर स्वामी जी विराजमान थे । एक ओर देवियाँ थीं, दूसरी ओर देवता बैठे थे । शिष्यवृन्द खड़ा हुआ था । [illegible] पसीने से [illegible] खड़ी थी ।

प्रवचन के अनन्तर सेठजी का स्वामीजी से परिचय [illegible] नगर के महान् देशभक्त और त्यागवीर श्री [illegible] (जिन्हें उच्चारण-सुविधा के कारण लोग [illegible] थे) था—स्वामी अद्वैतानंद का आग्रह [illegible] कि सेठजी के यहाँ प्रसाद-ग्रहण करें । उन्होंने स्वीकार कर लिया । सेठजी [illegible] प्रसन्न हुए । [illegible]......

१९४१

दर्शन शास्त्र है। यह सम्भावनाओं का तर्कजाल। क्या मतलब है इस फार्मूले का। एक किताब उठा कर उसने पूछा—'whatever 'x' may be,' 'y' implies that there is a 'fy' 'such as 'gx''

दोनों की बहस इस बात पर आकर रुकी कि दोनों एक-दूसरे के विषय नहीं जानते। और अज्ञान से अज्ञान ही हासिल होता है। पर अनीता की मुद्रा उस समय रुद्र, हिंसक, युयुत्सु थी......

पर नारी ही क्यों, समूह, राष्ट्र भी युयुत्सु बनते हैं।

यही सब सोचते हुए अविनाश ने अपना पुराना शौक, अखबारों की पुरानी कतरनें देखना, शुरू किया। उस की सहज नज़र पड़ी तो जुलाई १९३९ का 'माडर्न रिव्यू' था। सम्पादकीय में एक स्फुट टिप्पणी थी—'सोवियत सेना की सामरिक शक्ति'

'आंग्ल-फ्रांसीसी-सोवियत परस्पर-सहयोग-सन्धि के समय लाल सेना की शक्ति बीस लाख है। पैदल सेना में ही तेरह हज़ार से अठारह हज़ार सैनिक बढ़ा दिये गये हैं। इस समय सोवियत सैनिक अफसर पचास हज़ार हैं; और प्रतिवर्ष पाँच हज़ार सैनिक अफसर ट्रेनिंग पाकर बढ़ते जाते हैं। लाल सेना में कभी कोई बगावत नहीं होती। कोई आदमी भगोड़े नहीं होते। सेना को अधिकाधिक यन्त्रीकृत बनाया जा रहा है। विशेषतः उस में तोपखाना बढ़ रहा है। फौलादी रणगाड़ियाँ और टैंक बढ़ते जा रहे हैं। वायु-सेना की प्रथम पंक्ति में छः से सात हज़ार विमान हैं। विमान चालक साहसिक और शक्तिशाली हैं। परन्तु वे आज्ञा-पालन बहुत यान्त्रिक ढंग से करते हैं। इसी में इन की कमज़ोरी है। गत दो वर्षों में सोवियत नौ-सेना का आमूल परिवर्तन हुआ है। और अब छः सात जंगी बेड़े, कई विध्वंसक और मज़बूत समुद्री दूरमार जहाज़ बनाये गये हैं। विशेषतः सुदूरपूर्व के प्रदेशों में लाल सेना का संगठन और मज़बूत बनाया जा रहा है। मांचुकुओ और उत्तरी चीन में जापानियों के बराबर संख्या में सेना जमा कर दी गयी है।"

और इसी अंक में १९३९ के मई बीस को लन्दन से भेजी डा०

सत्याग्रहियों को चाहिये कि जेल जाने में उतावली न करें। सिर्फ़ जेल जाने से ही हमें स्वराज्य न मिल जायगा। आवश्यकता तो इस बात की है कि हम संयम और अनुशासन सीखें, बलिदान और कष्ट सहने की आदत सीखें।

सत्याग्रहियों की सूची स्वीकार करने में पहले मैंने कुछ ढील की। उस का नतीजा यह हुआ कि कुछ ऐसे सत्याग्रही स्वीकृत हो गये जिन्हों ने कभी कोई रचानात्मक कार्य नहीं किया था। कुछ सत्याग्रही तो सत्याग्रह के सिद्धान्तों में विश्वास भी नहीं करते थे। ऐसे आदमी आन्दोलन के लिए भार रूप सिद्ध हुए।

मैं कई बार कह चुका हूँ कि रचनात्मक कार्य तो असहयोग आन्दोलन की बुनियाद है। अब मैं गलती ही करूँगा। मेरी राय में इस में कोई बुराई नहीं है कि एकता के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अन्य दलों से सहयोग प्राप्त किया जाय। गुण्डापन दबाने के लिए अन्य दलों का सहयोग बुरा नहीं है।"

यहाँ आकर अविनाश जैसे ठिठक गया। अनिवार्य हिंसा के प्रश्न ने उस के मन को जैसे मथ डाला। वह सोचने लगा कि क्रोध का विकार तो है। यह शरीर-धर्म है। क्या उसे दमित किया जा सकता है?

यह तो सम्भव है कि आदमी अपनी महत्ता को इतना घुला-घुला कर कम कर दे कि वह शून्य हो जाय। विनय और सौजन्य का यह पुतला अपने-आप को क्या समाज पर प्रभावपूर्ण रीति से आरोपित कर सकता है?

और यह प्रश्न भी उस के मन में उठा कि आदमी आखिर निज को आरोपित भी क्यों करे?

जैसे यह हेम है। उस का जीवन बाहर से कितना शान्त, कितना निर्द्वन्द्व, कितना वेदना-शून्य है। परन्तु क्या सचमुच उसके भीतर कोई उद्वेलन नहीं है? हेम उधर बहुत दुखी रहती है। उसकी सहायता मैं क्या करूँगा जब मैं स्वयं निस्सहाय हूँ।

सोचते-सोचते अविनाश का सिर चकराने लगा। भादों की साँझ थी और उमस बहुत हो रही थी। वह अपने कमरे से उठ कर कलकत्ते के उस हिस्से की तरफ़ चला जहाँ काफ़ी गरीब बस्ती है। बहुत-कुछ खोज-बीन के बाद जाकर उसे हेम के मामा के घर का पता चला। और उसने बताया कि हेम अभी एक घर पर से काम करके लौटने वाली ही होगी। "बैठो" कहकर उसने खाट बिछा दी।

नाली एक ओर बह रही है। पास ही कूड़े-कचरे का ढेर लगा है। कुत्ते वहीं जूठी पत्तलों की नोच-खसोट में लगे हैं। पास ही म्युनिसिपैलिटी का नल है जिस पर कई नौकरानियाँ और नौकर छोटे-बड़े बर्तन लिये जमा हैं। वे सभी पानी भरना चाहते हैं। और जल्दी भरना चाहते हैं। इन में आपस में बड़ी तकरार, गाली-गलौज हो रही [illegible] है। पानी एक ज़रूरियात है। मगर उसे लिमिटेड [illegible] को पेट भर कर बुरा-भला वे कह लेते हैं : कहीं एक-दूसरे को [illegible] कर रही हैं, कहीं किसी ने दूसरे को सरकुचा कह दिया है। [illegible] यह नंगा-बुच्चा, निरन्तर स्वर है।...

परन्तु अविनाश देख रहा है कि यही निरी हैवानियत [illegible] यहाँ आदमी अपने असली रंग में है। और इन्हीं में से [illegible] हैं जो मनुष्य को बहुत ऊँचा बना सकते हैं। [illegible] सद्दाम वसूरी को मिला था न ? ठीक वैसे ही......

हेम आ गयी। बहुत थक गयी थी। [illegible]
परन्तु अविनाश को देखते ही उस के चेहरे पर मुस्कान जैसे खिल उठी। "ओहो, यहाँ कैसे आ गये तुम ?"

"तुम्हारा पता मुझे अपने गाँव के [illegible] से [illegible] लगा था।"

"पर उसमें भी खोज-खबर रखने वाले अपने लोग मिल हो जाते हैं।"

"हाँ, कलकत्ता समुन्दर है......"

"उस में मगर मच्छ बहुत हैं। पर तुम्हारे जैसे हीरे और रतन भी तो हैं। वहाँ पढ़ते हो बाबू ?"

"हाँ।"

"खाना-पीना ?"

"होटल में।"

"चलो हेम, आज तुम्हें होटल में खाना खिलाऊँगा तुम्हारा मामा रुष्ट होगा तो नहीं ?"

हेम ने बहुत विकलता से अपने मामा के उल्लेख को टाला—उन्हें मैं मरूँ या जीऊँ इसकी क्या फ़िक्र है। परन्तु......

हेम ने संकोच से कहा—"आप का पता भी नहीं मालूम था। सुना था यहीं कहीं पढ़ते हैं। और फिर बड़ी लाज लगती थी।"

"अपने मामा से कहा होता।"

"वह किस काम का आदमी है ? शराब पीकर धुत्त पड़े रहना यही उस की दिनचर्या है। महीने-के-महीने मुझ से पैसे ज़रूर वसूल कर लेता है। शुरू-शुरू में तो उस से बड़ी लड़ाई होती थी। वह कहता था कि फलाने सेठ के यहाँ काम करने जा। मुझे यह सब पसन्द नहीं था।"

"क्यों ? वहाँ क्या पैसे ठीक से नहीं देते हैं ?"

"ये सेठ लोग !" कहकर हेम बहुत कटुतापूर्ण मुँह बनाकर चुप हो गयी।

अविनाश कहता गया—"ऐसी तो कोई बात नहीं है। कोई व्यक्ति बुरा हो सकता है। पर हमें धनी वर्ग से क्यों नफ़रत करनी चाहिए। उन्हों ने बड़े-बड़े दान दिए हैं। राष्ट्रीय कार्य में मदद की है। बाढ़-पीड़ितों, अकाल-पीड़ितों की सहायता की है।"

"यही सब मुझे अच्छा नहीं लगता, अविनाश बाबू ! यह दान-दया का भाव क्यों ? क्यों है यह सब एहसान दिखाने की ललचाहट..."

अविनाश ने विषय बदल कर पूछा—"जान पड़ता है तुम्हें भी अभी किसी सेठ से बुरा सलूक मिला है।"

हेम चुप हो गयी। सिर्फ उस की बड़ी-सी आँखों में आँसू जम आये हैं ऐसा अविनाश को लगा। पर हेम ने मुँह फेर लिया। और बाहर पानी झमाझम बरसने लगा था। उस की ओट लेकर बहाना बनाने लगी।

तभी सहसा अविनाश को ख्याल हो आया कि पानी से बचने का तो इसके पास कोई साधन नहीं है। जहाँ इन्हें उतरना था, उस चौराहे पर कई होटल थे। और अविनाश की जेब में आज ही के ट्यूशन के, और इधर-उधर किसी का कुछ काम, लेखन इत्यादि से जमा कुछ रुपये थे।

उसने मन में सोचा कि चलो आज पुनः खाने-घूमने का सुख क्यों न प्राप्त किया जाय ? सुख द्विगुण हो जाता है जब उस में कोई साझीदार भी मिले । और हेम जैसी उस की बचपन की पड़ोसिन, सहेली; उसे खेलों में अपना 'गुइयां' मानने वाली । वह आज दुःख और कष्ट में है तो क्या ? वह बचपन के साथ-साथ झूला झूलने के, और चौसर खेलने के और छोटी नदी में तैराकी के सब सुख-संवेदन क्या सहसा भुला देने की चीजें हैं ? उन्होंने उन दोनों के मानसिक अस्तित्व की भित्तियों पर चूने की गहरी सादी पालिश की थी और उस पर सुन्दर विविध रंगों के भित्ति-चित्र बनाये थे जो अब धुँधले होते जा रहे हैं, फिर भी उनका रूप-लावण्य बढ़ता जा रहा है ।

हेम को भी कुछ बड़ा भला-भला-सा लग रहा था । [illegible] घनी उमस के बाद सहसा जैसे वर्षा ने दिल खोलकर अपना [illegible] दिया था । परन्तु इस सुख के भीतर कहीं एक [illegible] कि कहीं यह सारा सुख 'आगे पत, आगे पत, [illegible]' वाली बात न ठहरे ।

सिनेमा से लौट कर दोनों जब चौराहे पर उतरे तब बहुत देर तक वर्षा के कारण ट्राम-शेड में उन्हें खड़ा रहना पड़ा। उसके बाद वे पास के एक सुन्दर लाजिंग-बोर्डिङ्ग हाउस में पहुँचे। भोजन मिलने, उसे आग्रह पूर्वक खिलाने और बातचीत में समय यों खिसक गया जैसे चोर का धन हो। पता ही नहीं लगा कि कितनी रात बीत गयी है, और लौटने के लिए कोई भी वाहन इस विशाल नगरी में सुविधापूर्वक प्राप्त नहीं था। घोड़ा गाड़ी या बग्घी मिलती तो बहुत मँहगी होती। और फिर उस में हेम को उस के घर तक पहुँचाना और वहाँ से होस्टल वापस लौटना भी बड़ी समस्या थी। पानी बाहर एकरस बरस रहा था, इस गति से मानो प्रलय-वर्षा आज ही होकर रहेगी।

आखिर एक विचार अविनाश के दिमाग में उठा। उसने कहा—
"हेम, आज रात को इसी होटल में क्यों न ठहरा जाय?"

छोर पर एक अन्धा बैठा भीख माँग रहा है—

> संझा है धुंधली, वहीं पुल पर बैठा एक
> कातर अंधा दीन है, भीख माँगता, देख।
> दिल का बिल्कुल नेक है, करुण गीत की टेक।
> 'सांई के परिचै बिना अन्तर रहिगो रेख।'...

और यह आदमी उस अपरिचित अंधे को देखकर सहसा उस पर उपकार करने के उदार 'मूड' में आता है। उसे पास वाले एक बड़े बढ़िया होटल में ले जाता है। सब से उत्तम मिष्टान्न मँगाता है। और खूब छक कर उस अंधे को खिलाता है। खुद भूखा रह जाता है। बिल में उसके अन्तिम तीन पौंड चुकाकर, वापिस उसे पूर्ववत् अपने भिक्षा-स्थान पर ला बैठा देता है। थोड़ी दूर जाकर पुल के अधबीच पर से, कृतार्थप्राय, नीचे के हहराते गहरे जल-प्रवाह में कूद पड़ता है। लोग चिल्लाते हैं—आत्महत्या, आत्महत्या !

अंधा बहुत करुणा-भरे स्वर में कहता है—त्च्, त्च्, त्च्, जब तक अभी मुझे मिले ऐसे दाता लोग दुनिया में हैं, कैसे इन मूर्खों को आत्महत्या सूझती है।

अविनाश सोच रहा है फ्रायड ने लिखा है प्रेममात्र खुदकुशी है।...

हेम और तरह से सोच रही है। वर्षा की घोर झड़ी लगी है। कपड़े उस के खिड़की के पास बैठने से प्रायः पूरे भीग गये हैं। दाहिनी ओर के बालों से तो धार-सी टपक रही है। और फिर भी इस अनिश्चितता में कुछ अपार सुख मन में जग रहा है। अविनाश के पास होने मात्र से उसे एक अननुभूत निश्चिन्तता, एक विचित्र मादक अपूर्णता की प्रतीति हो रही है। तभी अविनाश ने कहा—सिनेमा चलोगी ?"

उसने आंखों में मुस्करा कर जैसे 'हाँ' कह दिया। इस घड़ी उसे सब कुछ जैसे स्वीकार्य हो।

सिनेमा से लौट कर दोनों जब चौराहे पर उतरे तब बहुत देर तक वर्षा के कारण ट्राम-शेड में उन्हें खड़ा रहना पड़ा। उसके बाद वे पास के एक सुन्दर लाजिंग-बोर्डिङ्ग हाउस में पहुंचे। भोजन मिलने, उसे आग्रह पूर्वक खिलाने और बातचीत में समय यों खिसक गया जैसे चोर का धन हो। पता ही नहीं लगा कि कितनी रात बीत गयी है, और लौटने के लिए कोई भी वाहन इस विशाल नगरी में सुविधापूर्ण अब प्राप्त नहीं था। घोड़ा गाड़ी या बग्घी मिलती जो बहुत मंहगी होती। और फिर उस में हेम को उस के घर तक पहुंचाना और वहां से होस्टल वापस लौटना भी बड़ी समस्या थी। पानी बाहर एकसा बरस रहा था, इस गति से मानो प्रलय-वर्षा आज ही होकर रहेगी।

आखिर एक विचार अविनाश के दिमाग में उठा। उसने पूछा—"हेम, आज रात को इसी होटल मे क्यों न ठहरा जाय?"

हेम भी कुछ न कह सकी। समस्या तो उसके सामने भी थी। वे घर से बहुत दूर निकल आये थे। लौटने के लिए साधन उन के पास कोई शेष नहीं था। और अविनाश के साथ पूरी रात बिताने का विचार भी कम स्पन्दन जगाने वाला नहीं था। यद्यपि इसमे उसे कुछ ऐसे लग रहा था कि वह कोई घोर पाप कर रही हो। वह विवाह के बाद बहुत जल्दी विधवा हो गयी। उस के बाद उस के यौवन के विकास के प्रथम पौर में ही कलकत्ते में उस सेठ के घर चौकीदार की कोठरी के पास जैसे उस पर तुषारपात हो गया। और उस के बाद धीमे-धीमे उस की आंख की शरम का पानी जैसे सोख लिया गया था। उसे पुरुष-पुरुष सब समान लगने लगे थे। सभी भेड़िये थे, कुछ लोगों ने चाहे बकरी की खाल ओढ़ ली थी। पर इस का मतलब यह नहीं है कि हेम फाहशा हो गयी थी। या वह गणिका हो गयी थी। 'गणिका' यानी नगर-सुन्दरी। वेश्याओं में जो मन से सुन्दरी और गुणवती होती थी और राजा लोग जिस का सम्मान करते थे, और गुणज्ञ, सहृदय लोग जिस की स्तुति करते थे। ललित विस्तर में जिसे 'शास्त्र विधिज्ञ कुशला गणिका

मुद्रा में थे। एक मुकुटधारी वृद्ध, दक्ष, चर्या माँगती-सी दिखायी देती थी। और एक स्त्री बेहोश पड़ी थी। परम सुन्दरी, पार्वत्य रूपाकार वाली रमणी। उसे भी कोई वीरभद्र उठाने की तैयारी कर रहे थे। अविनाश ने कुछ-कुछ विषय को समझते हुए पूछा—"यह क्या बना रहे हो?"

"यह दक्ष का यज्ञ-ध्वंस है। सती की मूर्च्छा है।"

"अच्छा तो अब आप पौराणिक विषयों पर भी रचना करने लगे?"

"क्यों, क्या मैंने कला में आधुनिक सामाजिक विषय ही चित्रित करूँगा, ऐसी कोई कसम खायी थी। यह तो कलाकार की मन की मौज है। वह अपने-आपको चाहे जिस समय के खण्ड में डाल दे।"

"परन्तु वह अपने स्वयम् के देश-काल को तो भूल ही नहीं सकता।"

"परन्तु अगर वह समयातीत पुराण-लोक की बात करे तो?"

"वहाँ भी वह सम्भव नहीं है। मार्क्स ने लिखा है कि आदमी अपने खुद के कन्धों पर नहीं चढ़ सकता।"

"अच्छा तो यों कहो कि आजकल मार्क्स पढ़ा जा रहा है। यह रौब मुझ पर ग़ालिब न करो। मुझे तुम्हारा स्वभाव पूरा मालूम है अविनाश! तुम पर एक-एक बार एक-एक लेखक का नशा छाया रहता है। कभी नीत्शे के बड़े प्रशंसक थे। बाद में गांधी जी के एकान्त उपासक बने। अब यह मार्क्स का नया-नया ही चस्का है। शायद यह भी ज्यादा दिन नहीं चलेगा..."

"तो क्या ये सब चिन्तक तुम्हारी कला को नहीं छूते?"

"मैं इतना सब फ़लासफ़ा नहीं पढ़ा। मैं सीधी बात जानता हूँ कि मुझे जो सुन्दर लगता है वह मैं चित्रित करता हूँ। बस, इससे अधिक झंझट में मैं नहीं पड़ता।"

"सुन्दर क्या है, यही तो झगड़े की बात है? मैं डिवी का 'आर्ट एण्ड एक्सपीरिअंस' पढ़ रहा था। उस में पढ़ा कि मेढ़क को मेढ़की परम

सुन्दरी जान पड़ती है और एक नीग्रो के लिए नीग्रो स्त्री पद्मिनी है। जिसे तुम सुन्दर मानते हो, उसे और सब मानें यह क्या ज़रूरी है? रीति-काल के सुन्दरियों के वर्णन पढ़ो। आज लगता है कि वे सब असुन्दर घिनौने, चिपचिपे और सड़ाँध भरे हैं..."

"तो तुम यह कहना चाहते हो कि रति-काम, सौन्दर्य-आकर्षण में मूल्य भी बदलते जाते हैं?"

"हां, मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्य होता जाता है, उस की भावों को प्रकट करने की पद्धतियां भी बदलती जाती हैं। आज जो लड़ाइयां होती हैं वे धर्मयुद्ध के नियमों से तो नहीं होतीं?"

"पर लड़ने-भिड़ने की आदमी की इच्छा तो ज्यों-की-त्यों है। शा ने लिखा है कि समूचे संसार को, सभी राष्ट्रों को निःशस्त्र बना दो, फिर भी आदमी अपने नाखून और दांतों से लड़ेगा। मनुष्य की यह आदम-प्रवृत्ति है।"

"जो आदिम है वह पशुवत् है। हम तो उस जंगली अवस्था से कहीं अधिक सुधरे हुए मानव हैं।" और इस बात पर अविनाश ने अहिंसा की महत्ता की बात छेड़ दी। और यहां ध्वंस, नाश, मरण, संहार, तांडव, रक्तपात वगैरह चित्रित करने वाले चित्रों की निन्दा की।

उसी समय वहां एक सज्जन आये। थके-मांदे अभावग्रस्त। बर्मा देश के कपड़े पहने हुए। बहुत मुसीबत-ज़दा से जान पड़ते थे। अमिय के वे पुराने मित्र थे। उन की बातें कुछ देर तक अविनाश सुनता रहा। बाद में वह उठकर चला गया। उन की बातचीत से जो कुछ जाना गया वह संक्षेप में बर्मा से उनके भाग आने की कहानी थी। वे रंगून में अच्छे व्यापारी थे। अक्याब तक उनकी दूकान की ब्रांच थी। पर जो कुछ आतंक वहां जापान के आक्रमण विभागों ने फैला दिया था वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार था। बीच-बीच में अविनाश प्रश्न पूछते जा रहे थे।

अविनाश ने पूछा—क्या वहां जापानियों को बर्मी लोग मित्र नहीं

मानते ? सभी तो मंगोल संस्कृति वाले हैं।

उस सज्जन ने जिस का नाम दशरथ मित्र था कहा—चीनी भी तो मंगोल हैं। जाति से क्या होता है। क्या एक जाति वालों में, एक धर्म वालों में युद्ध नहीं होते ? इतिहास में कई प्रमाण हैं।

जापान की युद्ध घोषणा के बाद ही रंगून खाली होने लगा। लोगों में आतंक तो तब फैला, जब १२ दिसम्बर १९४१ को खतरे की घण्टी बजी।

"खतरे की घण्टी का क्या असर हुआ ?"

"लोग बुरी तरह भागने लगे और २३ दिसम्बर को सुबह साढ़े दस बजे जब फिर खतरे की घण्टी बजी, तो बीस मिनट बाद ही जापान के गोले बरसने लगे। कोई ४० वायुयान बताये जाते है।"

"रंगून की क्या हालत हो गयी है ?"

"रंगून नगर और उस के आसपास के अधिवासी माल छोड़, जान लेकर भग खड़े हुए। अपनी-अपनी जान बचाने की पड़ी थी। पुरुष अपनी जान लेकर भाग रहे थे और स्त्रियाँ अपनी। बेचारे बूढ़ों और बच्चों की हालत तो भी शोचनीय थी। कोई बैलगाड़ी से, कोई मोटर से, और बहुतेरे पैदल ही भाग रहे थे। आसपास के गाँवों में, खाइयों में, जंगल में लोग छिपे थे।"

इस प्रश्न पर कि भारतीयों की वहाँ क्या स्थिति है उन्होंने कहा—"जिस दिन से आक्रमण शुरू हुआ, उसी दिन से भारतीय अपना व्यापार धन्धा बन्द करके अपने देश आने का मार्ग ढूंढ़ने लगे। कहते हैं कि बहुतेरे आदमी पैदल ही चल दिये। कितने ही आदमियों के स्त्री और बच्चे हो छूट गये जिनका कोई पता नहीं है। जहाज से आने के लिए कोई सुविधा नहीं है। लोग प्राणों को संकट में देखकर, आर्थिक दीनता का पहाड़ फट पड़ने से हाय-हाय कर रहे हैं। कितने ही व्यापारियों का धन बैंकों में बन्द होने से उन के न मिलने से बड़ी परेशानी है। सामान भी तितर-बितर हो गया है। एक ही शब्द में एक दिन

जो भारतीय बर्मा में लखपती था, वह आज कंगाल है, उसे अब पेट भरने तक को तबाही है।"

"तो आप कैसे चले आये?"

"मेरे आने की बात न पूछिये। यही एक जहाज विजगापट्टम से कुछ माल लेकर रंगून पहुँचा था। इस को हमें सूचना मिली और सुना कि माल उतारे बिना ही यह जहाज़ भारत वापस लौट जायगा। परन्तु हम लोग बन्दर पर पहुँचे। मेरा सारा सोना और सामान लेकर मेरे मित्र आ रहे थे। सो राह में छूट गये। वहां न तो कुली और न मज-दूर। भीड़ इतनी अधिक थी कि मुश्किल से हम जहाज पर बैठे। जान में जान आयी। परन्तु रास्ते-भर में खाने-पीने की बड़ी तकलीफ थी। न कहीं खाने का इन्तज़ाम न पानी का प्रबन्ध। यही कारण है, सुनते हैं कि पाँच आदमी जहाज में मर गये। एक को तो हम ने अपनी आँखों देखा है। जब हम लोग राम-राम कहते हुए विजगापट्टम पहुँचे तो वहाँ सब से बड़ी कठिनाई यह हो गयी कि बर्मा की नोटें नहीं चलतीं। यहाँ पहुँचने पर भी बड़ा सङ्कट है। जिन का कोई परिचय नहीं आश्रय नहीं, वे बेमौत मर जाते हैं।"

दशरथजी के बसाने-टिकाने की बात चल पड़ी। और अमिय ने कहा—मेरे एक परिचित सेठ लक्ष्मीचन्दजी हैं। उन के यहाँ एक पोर्ट्रेट बनाने मुझे जाना ही है। आप साथ चले चलिए। हो सकता है, शायद कोई काम निकल आये।

अमिय, सेनगुप्त और दशरथ मिश्र सेठजी के यहाँ पहुँचे तब शाम के तीन बजे थे। और सेठजी मजे से अखबार पढ़ रहे थे। अमिय ने दशरथ का संक्षिप्त परिचय दिया—बर्मा से आये हैं, चित्र भी बनाते हैं, यानी अच्छे फोटो-एनलार्जर भी हैं। प्रिंट भी कर देते हैं....

सेठजी ने उस बात को काट कर पूछा—मैंने दी थी उस तस्वीर का क्या बना जी? हम को तो इस श्राद्ध की तिथि से पहले बड़ा-सा पोर्ट्रेट पूरा तीन-रंगा यानी फोटो जैसा हूबहू चाहिए।"

"पर सेठजी, आप से पहले भी बात हुई थी। आजकल फोटोग्राफी का सामान और रंग मिलते नहीं। जर्मन रंगों के दाम तो बहुत बढ़ गये हैं। चोरी-छुपके बेचते हैं...

वह मैं सब जानता हूँ। पर पचास रुपये से ज़्यादा क्या देना? और उस की जड़ाई के ऊपर से तीस-पैंतीस रुपये बोल रहा था काँच-वाला। आप तो इस कला में बड़े निपुण हैं, सिद्धहस्त हैं। आप के तो बाँयें हाथ का खेल है। और रंग भी कौन से बड़े खर्च होने वाले हैं? पगड़ी का रंग है, बस। कपड़े तो हमारे पिताजी सफेद ही पहनते थे।...

"पर सेठजी मेहनत?" दशरथ ने बीच में बात काट कर कहा।

"तस्वीर में कौन सी मेहनत पड़ती है। यह हिसाब का काम है क्या? यह तो मन की मौज का काम है। आप यह नहीं देखते कि मेरी बैठक मे आप के नाम का बना पोर्ट्रेट टँगा होने पर कितना बड़ा विज्ञापन हो जाता है। आपको घर-बैठे सैकड़ों आर्डर जो मिलेंगे। रही बात दाम बढ़ाने की। सो हमारे कल्लूभियाँ पेंटर आजकल यहाँ नहीं हैं। नहीं तो ये हनूमानजी और ये कांच पर फूलों के गमले दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह रुपये में ऐसी उम्दा, बढ़िया चीज़ को बना कर दे गये थे।

खिन्न होकर दशरथ इस तुलना पर मुस्कराया। अविनाश को जैसे धक्का-सा लगा। वह जिस हाथी-दाँत की मीनार में रहता था, उस की नींव का एक पत्थर जैसे किसी ने निकाल लिया। कला को भी इस तिजारती युग में बहुत नीचे उतर आना पड़ा है। वह भी 'गणिका' बन गयी है क्या? गणिका तो गणतन्त्र की सब से प्रिय वस्तु थी। वह सामने दीवाल पर टँगे सस्ते नाथ द्वारे वाले भड़कीले हरे-नीले-सफेद रंग के कोठियों-बादलों-मोरों और विरहिणियों के चित्रों की ओर देख-देखकर सोच रहा था—कला कभी सती थी। अब उसे मूर्च्छा आ गयी। शक्ति उस पर चल गयी, लक्ष्मीपति के 'मोहिनी' रूप के सुदर्शन

को। खण्ड-खण्ड होकर वह गिर गयी। उस का मातृ-स्थान कामाख्या में गिरा। कला आज उसी कार्निवाल में कूल्हे मटका कर नाचने वाली अधनंगी छोकड़ी के कोढ़ जैसे रंगे ओठ और गले में इमिटेशन मोतियों का हार बनी रह गई है। कला अब नकली सलमे सितारे की ओढ़नी है, कला रोल्ड-गोल्ड है, कला निरा छलावा है। कार्निवाल के जोकर के नाक पर का सफेद धब्बा, जिस से सब का, जन साधारण का, मनोरंजन हो। कितनी हेय बना दी है हम ने अपनी संस्कृति! परन्तु....

अनीता

उस्ताद बाबू खाँ मशहूर बीनकार थे; और अनीता उन की शागिर्द थी। या यों कहें कि बैरिस्टर प्रभातचन्द्र को पक्के गाने का बड़ा शौक था और उसी का जीता-जागता प्रमाण था उन्होंने अपने आश्रय में रखा यह वृद्ध 'स्वरों का सम्राट'! बाबा आदम के जमाने का भूरे दागों वाला काला कोट, अन्दर जगह-जगह पर तार-तार हुआ मलमल का कुर्त्ता, चूड़ीदार पाजामा और खास किस्म की कसीदे की टोपी उस्ताद की पोशाक थी। परन्तु उसके बाह्य वेश से क्या? उन के पास जो कला थी वह अलौकिक थी—ताल का खूँटा पक्का रख कर सुरों के रंग-बिरंगे डोरों से भावनाओं के सुन्दर-सुन्दर सप्त-रंगी रज्जु बुनना उन का सहज काम था। मानो भगवान ने अति-करुण स्वरों के लिए उनके कंठ की निर्मिति की थी। और स्वरों के साथ छोटे से चेहरे पर वे बड़ी आँखें और भी भली लगतीं। अकेले में ही वे कोई दर्द-भरी ठुमरी अलापने लगते, उन की आँखों में से सुन्दर स्वरों की मालिका आँसुओं की धार बनकर झर पड़ती। और अपने कोट की सीवन-उधड़ी बाईं बाँह से वे आँसू पोंछने लगते, तब सामने पड़े तंबूरे से छिड़े संवादी स्वर वह सुनते रहते। कभी किसी छोटे गाँव में शौकीन मिल गये तो उन्हें तबीयतदारी से गाना सुनाकर तृप्त कर दिया, तो कभी बड़े-बड़े उमराव और रियासती ठकरासों की

बैठक में अड़ गये—नहीं गायेंगे साहब ! इन भैंसों के आगे क्या बजायें ? ऐसे मौजी जीव थे। कभी अपने मरहूम उस्ताद के किस्से को छेड़ देते। खाली समय में तानपूरे के चार तारों से ही खेला करते रहते। सबेरे एक तानपूरा सुर में लगा कर कोने में रख दिया। शाम को दूसरा तानपूरा स्मृति से वैसा ही लगा रहे हैं। आज बैरिस्टर प्रभातचन्द्र की बैठक में खाँ साहब अकेले सङ्गीत-साधना कर रहे हैं। बंद बूढ़ी आँखों के आगे एक बहुत बड़ा चित्रपट जैसे सरक गया....

तब खाँ सहाब जवान थे। उस्ताद का उम्र गिनने का मापदंड था दम कितनी दूर तक टिकता है! चार-चार आवर्तनों की तान यों 'झुर' से निकल जाती मानो पंछियों का झुंड हो। जमींदार साहब से उस्ताद का बड़ा याराना था। वह—वह महफिलें जमतीं, कि उन की अब सिर्फ याद बाकी रह गयी है। और वह याद भी ऐसी कि जिस के सलमे-सितारे उखड़ गये हों, जिस के रंग फीके पड़ गये हों और जिस का परिमल मात्र शेष हो।

तब की याद आते ही मन में जैसे सिरहन-सी दौड़ जाती है। मिरज के तानपूरे के सुर जैसे एक प्राण हो जाते। पानी में जैसे चाँदनी घुल-मिल जाती है, वैसे ही खाँ साहब का षड्ज लगता। कभी पूर्वी की अस्ताई हो रही है तो कभी यमन का ख्याल गा रहे हैं। उत्तर-रात तक यह रंग जमा रहता और रसिक कहते...."खाँ साहब, अब मालकंस का पहर हो गया ?"

अलग-अलग रत्न और जवाहरात दिखाने वाले जौहरी ने मानो बीच ही में से कस्तूरी की छोटी-सी बोतल निकाली हो। और उसे खोलने से पहले ही कस्तूरी का गन्ध एकदम हवा में फैलने लगा हो, उसी प्रकार से षड्ज-पंचम करने वाली तानपूरे की जोड़ी षड्ज मध्यम बोलने लगती है। वातावरण में मालकंस के स्वर मानों भरे जा रहे हैं। और बाद में लगभग डेढ़ घंटे तक सुनने वाले जैसे मन्त्र-मुग्ध हों।

खाँ साहब के मालकंस के पहले षड्ज ने ही इतनी बढ़िया मुरावट

होती थी कि धैवत के पहिले स्पर्श पर लगता कि मानो शरत्कालीन मेघच्छटा पर चाँद की नुकीली कोर उठ आयी हो। और अन्त में 'अकेली मत जइयो राधे जमना के तीर' जैसी उन्मादक भैरवी के स्वर में बिखेर कर वातावरण में मानो गुलाब-जल से छिड़के ठंडे फुहार का-सा छिड़काव करके खाँ साहब तबलची का हाथ रोक देते।

बाबू खाँ संगीत में जितने अद्वितीय थे, जीवन में उतने ही अति सामान्य और झक्की से व्यक्ति थे। उन का कुछ अजब हिसाब था : वाद्य सभी बजा लेते थे—बीन से तो खैर उनकी मुहब्बत ऐसी थी कि कोई अपनी आशना से भी क्या करता। उस बीन के लिए अलग जरी की शाल थी। उसे गहने पहनाये गये थे। उसमें सचमुच मोम से उन्होंने रत्न जड़वाये थे। वैसे अत्यन्त भाविक, सरल चित्त, अक्रोधी, सन्तप्राय: व्यक्ति थे उस्ताद!

अनीता दीवान खाने में आयी तो साथ में एक किताब वह लिये हुए थी। बाबूखां यद्यपि थे परम धार्मिक फिर भी उस्ताद के जमाने से संस्कृत गाना सीखे थे। और वही गाते थे! अनीता जो किताब अपने साथ लाई थी, वह चुने हुए संस्कृत श्लोकों की किताब थी। और उस्ताद उस सुन्दर शब्दावली में स्वर का माधुर्य भर देते थे। यानी रागदारी में और लयकारी में उसे बाँधकर जैसे सुरीली मीनाकारी कर देते।

आज के सङ्गीत पाठ के बाद कुछ और ही चर्चा चल पड़ी। उस्ताद अकेले थे। पत्नी कई वर्षों पहले मर गयी थी। उन की अपनी कोई सन्तान नहीं थी। अनीता पर इस प्रकार से स्नेह करते थे जैसे कोई अपनी लड़की पर स्नेह करता हो! बातचीत में जिस विषय पर चर्चा चली वह अनीता के विवाह की बात थी। अनीता का लज्जारुण मुख और भी आरक्त हो उठा।

"सुनता हूँ तुम्हारा होने वाला पति बड़ा आर्टिस्ट है! अच्छा क्या नाम है उसका?"

"आप भी बाबू खाँ यों ही मुझे चिढ़ा रहे हैं?

"नहीं-नहीं, मैंने उस का भला-सा नाम याद किया था....शायद अमिय है। बहुत अच्छे पेंटर हैं।"

इस बात पर अनीता उठ कर अन्दर चली गयी।

ट्यूशन करने के लिए अमिय उनके घर में आया था और उस्ताद से उस की भेंट हो गयी थी। उसी से उन्होंने अमिय की जानकारी हासिल की थी।

अनीता के मन में बड़ा कौतूहल है: वह कौन है अमिय! और यह क्या चर्चा है जो घर में उठी है। उसे यह पसन्द नहीं है, वह अभी फाइनल ईयर में है। पढ़ रही है। वह अभी ऊँची शिक्षा लेगी, शायद विदेश भी जायगी। अभी से यह ब्याह और शादी, चक्को और चूल्हे का क्या चक्कर है! यह फिजूल है। वह पिता जी से जाकर कह देगी—ब्याह का राग अभी बन्द करें। परन्तु महत्त्वाकांक्षा जहां एक ओर मन में पंख उगाती है, वहां दूर-दूर के छायायनों की सुन्दर हरियाली सुचिक्कण, पल्लव-संकुलता के प्रश्रय का मोह भी तो जगाती है।

और इसी उधेड़-बुन में वह संस्कृत के सुन्दर श्लोकों का चयन पढ़ने लगी। उसमें 'अन्योक्ति-मुक्तालता' के लेखक शम्भू थे और कालिदास भी थे। उसने पढ़ा वसन्त-श्री का यह वर्णन.......

निर्यातं तगरैः स्थितं कुरवकैरुज्जृम्भितंचम्पकैः
सञ्जातं बकुलैः स्मितं विचकिलैरुन्मीलितं पाटलैः।
किं रोलम्ब! विलम्बसे विहरणक्रीडां कुरुष्वापि तैः,
क्लिन्योद्गन्यतु वञ्चितामृतरसः पाकान्वितः पंकजः॥

कवि भ्रमर को सम्बोधन कर रहा है....''तगर, खिल पड़े; कुरवक, कुसुमित हो गए; बकुल, विकसित हो गये, विचकिल (एक प्रकार की लता) हँस पड़ी, पाटल (गुलाब) भी प्रफुल्लित हो चुके। हे भ्रमर! विलम्ब क्यों कर रहे हो? विहरण करो और सुधा से भी अधिक मधुर

परिपक्व स्वर में (कोकिला के) पंचम राग की तरह सरस, मंजु गुंजन भी साथ-साथ में होता चले।"

और फिर उसका मन जैसे नहीं लगा इसलिये उस ने और पन्ने पलटे और एक श्लोक यह मिला जो पढ़ा और गाया—

पीयूषद्रवहारिणी सुमनसां भ्रूलास्यविस्तारिणी;
त्वत्सेवाभिरवापि काप्यभिनवा वाग्देवते! भारती।
अस्त्येका तु कृतांजलेर्जननि! मे शम्भोरियं प्रार्थना;
मद्वाचां क्वचिदस्तु वस्तुनिपुणः श्रोता सचेता जनः॥

वाग्देवते भारति! अमृत की मधुरता को मंद करने वाली तथा सहृदयोंकी भौंहों को आनन्द से नचा देने वाली, किसी नूतन वाणी को मैंने प्राप्त किया है। किन्तु माँ! हाथ जोड़ कर तुम से मेरी एक प्रार्थना है कि मेरी उस वाणी को सुनने वाले जन काव्य के मर्मों के जानने वाले तथा सहृदय हों।

तो जैसे काव्य का मर्मज्ञ रसिक है, कस्तूरी मृग का प्राणलेवा उस सुगन्धि को पहचानने वाला पारखी है, रत्नों का मूल्यांकन करने वाला जौहरी है, संगीत की सुन्दरता का ग्रहण समझदार ही कर सकता है, वैसे ही क्या नारी के यौवन का भी कहीं कोई पूर्व-निश्चित अभिभावक है। क्या कोई संकेत स्थल, कोई ठौर, कोई पूर्व नियोजना है...परन्तु अनीता ने फिर सोचा कि वह आजीवन संगीत-साधना करेगी, नृत्य के पैरों में अपने श्वासों के घुंघरू बाँध देगी। वह नहीं करेगी विवाह—घर की चहारदीवारी में बँधी स्त्री का जीवन उसका आदर्श नहीं है। परन्तु...

अनीता यह सब सोच रही थी कि सहसा उसे आड़ से सुना हुआ अपने पिता का वह उलाहना याद आया। एक दिन सौतेली माँ और पिताजी में चर्चा हो रही थी। माँ के सुर में एक प्रकार की रुखाई थी—"लड़की अब बढ़ती जा रही है। ब्याह की फिक्र करोगे या नहीं लोग-बागों में चर्चा होती है। यह गाने-बजाने का शौक इतना बढ़ा

कर लड़की को क्या नटिनी बनाने जा रहे हैं।"

पिता ने बहुत ठंडे स्वर से कहा—"यह तुम्हारे मुंह से मैं पचास बार सुन चुका हूं। मैं अपने बच्चों को वही सिखाऊंगा, जिधर उनकी रुझान है। अनीता को गाने और नाच से शौक है। वह सीखे..."

"पर यह आज़ादी। यह पराये मर्दों के साथ उठना, बैठना। इस बात को लेकर एक दिन घर में कलह मच जायगी।"

"वह पढ़ी-लिखी लड़की है अपनी जिम्मेदारी आप समझती है।"

और उस के बाद अनीता से प्रभातचन्द्र ने धीमे से कहा था—"यह ठीक नहीं अनीता, रोज़ शाम तुम देर तक बाहर रहती हो। भोजन के समय तक घर आ जाया करो न ?"

अनीता ने चुपचाप सुन लिया था। यह बात सच है कि इधर उस का अमिय से मेल जोल बढ़ता जा रहा था। परन्तु उनका परस्पर आकर्षण एक बौद्धिक स्तर पर था, जैसे एक कलाकार दूसरे कलाकार का मूल्य करे। यही सोचते-सोचते अमिय को एक पत्र लिखने बैठ गयी—

"प्रिय अमिय"

मैं तुम्हें क्या लिखूं यह समझ में नहीं आ रहा है। पर फिर विचार उठा कि तुम्हें स्मरण दिला दूं। अमलतास के फूलों के फुल्ल, वृक्ष का एक चित्र तुम मुझे देने वाले थे न ? क्या वह बात भूल गए ? मुझे उस पेड़ के चित्र की बहुत याद आ रही है। क्योंकि वह पीला-पीला अवर्णनीय सुषमा का फूलों-लदा पेड़ मुझे बहुत प्रिय है। वह ऐसे जान पड़ता है जैसे नीलाकाश के जलाशय पर सुनहले पाले फैलायी बहुत-सी नौकाएं चली जा रही हों; जैसे पुष्प-राजों को पीले तागों में पिरो कर बनराजी ने अपना कंठ शृंगारा हो, जैसे झलमलाते स्वर्ण-मुकुट पहने वृक्ष ऋतुराज के स्वागत करने के लिए कटि-बद्ध हों।...

परन्तु मैं यह कविता-सी क्या करती चली। मैं तो सिर्फ तुम्हारे वचन की याद दिलाने जा रही थी। परन्तु ये पुरुष और उनके वचन,

दोनों ही विश्वास करने योग्य नहीं।

तुम्हारा नाम अभिय जिस ने रखा उस ने गलती की। तुम संजीवन नहीं, मरण का पाठ पढ़ते हो। तुम्हारी कला में इतनी सख्त वेदना-पूजा क्यों है? परन्तु फिर सोचती हूँ कि यह सब तुम्हें पूछने का अधिकार मुझे है? कहाँ से है? उत्तर दोगे?

(सस्नेह काट कर) तुम्हारी—

अनीता—"

पत्र लिख तो लिया परन्तु उसने उसे डाक में कभी डाला ही नहीं।

उस के मन में और भी बहुत-कुछ पत्र में लिखने को उमंगें उठ रही थीं। परन्तु......

सेठजी

आखिर दशरथ मित्र से सेठजी ने अपने पिता का रंगीन चित्र ...िचहत्तर रुपये पर बनवा लिया; और अब वे सोच रहे थे कि क्यों न ...क अखबार निकाला जाय, जिस से नाम और नामा दोनों कमाने का ...त्तम ज़रिया मिल जाय। जहाँ तक अखबार के खर्च का सवाल था ...स की उन के पास कमी नहीं थी। युद्ध के प्रचार वाले विज्ञापन मिल ...ाते। दशरथ चित्रादि बना देंगे।

यदि यह पूछा जाये कि एक ओर तो सेठजी व्यक्तिगत सत्या-...हियों के जलपान की विशेष व्यवस्था करते थे और दूसरी ओर वे युद्ध ...चार का समाचारपत्र कैसे निकालने जा रहे हैं तो वे झट से अखबार ...ठाकर यह खबर पढ़कर सुना देते।

अखिल भारतीय चर्खा संघ द्वारा युद्धकार्य के लिए कम्बल प्रदान ...किये जाने की चर्चा करते हुए श्री कृपलानी ने कहा कि गान्धीजी ने ...सिद्धान्ततः नहीं बल्कि नीतितः रोजगार सम्बन्धी कार्य को युद्ध विरोधी ...ार्रवाइयों से अलग कर दिया है। महात्मा गान्धी यह अनुभव करते ... कि यदि कम्बल प्रदान करने से अप्रत्यक्ष रूप से युद्धोद्योग में सहायता ...हुंचती हो तो भी उस पर प्रतिबन्ध न लगाना चाहिये। सेठजी का ...विवेक मुर्दा हो चुका था।

और आगे पढ़ते, गुजरात का दौरा समाप्त करके कांग्रेस के प्रधान-

मन्त्री आचार्य कृपलानी ३ अक्टूबर को अहमदाबाद आये और कांग्रेस भवन में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं से मिले और गान्धीजी द्वारा संचालित सत्याग्रह की वर्तमान योजना के सम्बन्ध में बातचीत की। श्री कृपलानी ने कहा कि सरकार बड़ी संख्या में सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करने के लिए अनिच्छुक दिखाई देती है और गान्धीजी सरकार के युद्धकार्य में बाधा नहीं डालना चाहते। इस तरह दोनों एक-दूसरे की गलती से लाभ उठाने के अवसर को ताक में हैं। व्यक्तिगत सत्याग्रही संख्या में कितने थे। और भारत का युद्धोद्योग? द्वितीय महायुद्ध में भारत ने जो-कुछ दिया वह सब अँग्रेजों ने जबरदस्ती और भारत के लोगों की गरीबी का फायदा उठाकर लिया था।

द्वितीय महायुद्ध में, भारत का युद्धोद्योग इस प्रकार रहा—

बिना अनिवार्य सेना-भरती के ही भारत ने २५ लाख आदमियों की शस्त्रास्त्रसज्ज सेना खड़ी कर दी थी। जलसेना में ३० हजार, विमान सेना में ३० हजार और स्त्रियों की सहायक सेना १० हजार भारतीय, स्त्री-पुरुष सैनिक थे।

सहायक कार्यों के लिए ८० लाख भारतीय काम करते रहे।

युद्ध कारखानों में ४० लाख मजदूर काम कर रहे थे।

रेलों में १० लाख अतिरिक्त कर्मचारी भरती किये गये थे।

युद्धकाल में भारत की विमान सेना २ दस्ते (स्क्वैड्रन) से बढ़कर १० दस्ते हो गई थी।

और उनका विचार अमिय से मैत्री करके धीरे-धीरे अनीता पर डोरे डालना भी था। क्योंकि उस के नृत्य-गीत वह देख चुके थे। और लक्ष्मीचंद का स्वभाव यथानाम चंचल था। नित्य-नूतन का प्रेम उनका कभी समाप्त नहीं हो रहा था। तभी अविनाश ठीक ही कहता था कि हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल में ही यह पूंजीवाद की घुन लगी हुई है। इसने हमारे राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खोखला और बाहर से खंडित कर दिया है। एक व्यक्ति सेठजी के सुधार से क्या? परन्तु...

अमिय

अमिय चित्रकार तो है, पर स्वयम् अपना मन नहीं जानता। जब से उस ने अनीता का नृत्य-गीत भरा विशेष कार्यक्रम देखा है, वह जैसे अनीता की कला का भी दास हो गया है। इस समय वह भारतीय नृत्य की प्राचीन पद्धति पर कोई पुस्तक देख रहा है। पन्ने उलटा रहा है। कुछ पढ़ता है, और कुछ उस का मन सुखदोष्ण स्मृति-संवेदनाओं से अभिभूत हो उठता है। उसने पढ़ा :

नाटक शास्त्र में दो प्रकार के नाचों का विस्तृत उल्लेख है, ताण्डव और लास्य। ताण्डव के प्रसंग में मुनियों ने भरत मुनि से प्रश्न किया कि यह नृत्त (ताण्डव) किस लिये भगवान शंकर ने प्रवृत्त किया, तो भरत मुनि ने उत्तर दिया था कि नृत्त किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं रखता। यह शोभा के लिए प्रयुक्त होता है। स्वभावतः ही प्रायः लोग इसे पसन्द करते हैं और यह मंगलजनक है, इसीलिए शिवजी ने प्रवर्तित किया। विवाह, जन्म, प्रमोद, अभ्युदय आदि के उत्सवों के अवसर पर यह विनोद-जनक है, इसलिए भी इसका प्रवर्तन हुआ है [नाट्यशास्त्र (चौखंबा) ४.२६०-२]। इस वक्तव्य से जान पड़ता है कि विवाह आदि के अवसरों पर नृत्त या ताण्डव का अभिनय होता था। नाट्यशास्त्र में नृत्त के आविर्भाव की बड़ी मनोरंजक कहानी दी हुई है। ब्रह्मा के अनुरोध

पर नाना भूतगण समावृत्त हिमालय के पृष्ठ पर शिव ने सन्ध्याकाल में नाचना आरम्भ किया। तण्डु नामक मुनि को शिव ने उसी नाच की विधि बताई थी। किस प्रकार हाथ और पैर के योग से १०८ प्रकार के करण होते हैं, दो करण (अर्थात् हाथ और पैर की विशेष भंगिमा) मिलकर किस प्रकार नृत्तमातृका बनती हैं, फिर तीन करणों से कलापक, चार से मण्डक और पाँच करणों से संघातक बनता है। इस से अधिक नौनिक करणों के संयोग से किस प्रकार अंगहार बनते हैं, इन बातों को और विशद रूप से समझाया। अंगहार नृत्त के महत्वपूर्ण अंग हैं। ये बत्तीस प्रकार के बताये गये हैं। इन भिन्न अंगहारों के साथ चार रेचक हैं...पाद रेचक, कटी रेचक, कर रेचक और कंठ रेचक। अब शिव इन रेचकों और अंगहारों के द्वारा अपना नृत्त दिखला रहे थे, उसी समय पार्वती आनन्दोल्लास में सुकुमार भाव से नाच उठीं। पार्वती का यह नाच नृत्त (या उद्धत नाच) नहीं था, बल्कि नृत्य (या सुकुमार नाच) था। इसी को लास्य कहते हैं।

और सोचा : 'अनीता से मेरा विवाह हो जाये तो कितना सुखी और सौभाग्यवान मैं होऊँगा?' इधर सेठजी पत्र निकालने जा ही रहे हैं। उसकी पब्लिसिटी का प्रमुख मैनेजर का कार्य, और अनीता जैसी संगिनी...आदि आदि। पर फिर वह खिड़की से बाहर देखता : नर-कंकाल की भाँति भूखे भिखारी, चिथड़ों में लिपटे चले जा रहे हैं। क्या उनकी ज़िन्दगी इसी तरह कीड़ों की भाँति मर जाने के लिए है? हड्डियाँ, एक अकाल में तो गुजरात की पिछड़ी जातियों ने हड्डियों को पीसकर खा लिया था...क्या यह सब नृत्य का विषय नहीं हो सकते? अभी भी हमारे सामन्ती संस्कार नहीं मिटे हैं मन से। पर यह दक्ष के यज्ञ भंग का चित्र......

और फिर पढ़ने लगा : एक और अवसर पर दक्ष-यज्ञ विध्वंस के समय सन्ध्याकाल को जब शिव नृत्त कर रहे थे, उस समय शिव के गण मृदंग, भेरी, पटह, भाण्ड, डिंडिम, गोमुख, पणाव, दर्दुर आदि

आतोद्य बाजे बजा रहे थे, शिव ने आनन्दोल्लास में समस्त अंगहारों के नाना भाँति के प्रयोग से लय और ताल के अनुकूल नृत्य किया। देव-देवियाँ और शिव के गण इस अवसर पर चूके नहीं। डमरू बजाकर प्रमत्तभाव से नर्तमान शंकर की विविध भंगियों को अर्थात् विविध अंगहारों के पिण्डीभूत बंध विशेष को—पिण्डियों को—उन्होंने याद रखा। ये पिण्डियाँ उन-उन देवताओं के नाम पर प्रसिद्ध हुई, जिन्होंने उन्हें देखा था। तब से किसी उत्सव और आमोद के अवसर पर इस मांगल्यजनक नृत्त का प्रयोग होता आ रहा है। प्राचीन भारतीय रंगशाला में उन दिनों नृत्त या ताण्डव नृत्य का बड़ा प्रचलन था। अनेक प्राचीन मन्दिरों पर भिन्न-भिन्न करण और अंगहारों के चित्र उत्कीर्ण हैं। नाट्यशास्त्र के चतुर्थ अध्याय में विस्तृत रूप से इस के प्रयोग की बात बताई गई है।

सब से पहले ब्राह्मण लोग कुतप (नगाड़ा ?)- विन्यास विधिपूर्वक कर लेते थे; फिर भाण्ड वाद्य के बजाने वालों के साथ नर्तकी प्रवेश करती थी, उसकी अंजलि में पुष्प होते थे। एक विशेष प्रकार की नृत्य-भंगी से वह रंगस्थल पर पुष्पोपहार रखती थी। फिर देवताओं को विशेष-भंगी से नमस्कार करके वह अभिनय आरंभ करती थी। जब वह गान के साथ अभिनय करती थी, तब बाजा बजना बन्द रहता था और जब वह अंगहार का प्रयोग करने लगती थी, तब वाद्य भी बजने लगते थे। इस प्रकार गीत और नृत्य के पश्चात नर्तकी रंगशाला से बाहर निकलती थी और फिर इसी विधान से अन्यान्य नर्तकियाँ रंगभूमि में पदार्पण करती थीं और बारी-बारी से पिंडी बंधों का अभिनय करती थीं (ना० शा० ४.२६१-७७)।

एलियट जैसे कलाकारों की कठिनाई यह है कि वह मूलतः सुविधा भोगी सुविधाजीवी लोग हैं। वे अपनी रचनाओं पर कला की चोंच चढ़ाकर रहते हैं। गोतिएर जैसे कला के लिए कला-वादियों का सहारा लेते हैं। उनका जीवन निरंतर एक सु-वैष्णा-वितृष्णा के सोपान पर

सीढ़ी-पर-सीढ़ी चढ़ते जाना है। वह प्रवंचना की मायाविनी इन्द्रजालपूर्ण स्वप्नों की दुनिया में भटकते फिरते हैं, कुहरे में टटोलते हैं, चाँदनी पर बादल ढँके हैं, और उन के मन के वातावरण में निरा धुन्धलका-ही-धुन्धलका रहता है। इसलिए उन्हें सहारा लेना पड़ता है रहस्यमयी शब्दावली का। उन के जीवन में ऊब और निरंतर बढ़ती ऊब ही उन्हें दिखाई देती है।

एक किताब उन्होंने उठाकर रख दी और दूसरी एक उठा ली और पन्ने टटोलने लगे :

'प्राणी-जीवन-विज्ञान की भाँति ज्ञान-शास्त्र भी अनुभव पर आधारित है। प्राणी-शास्त्र प्राणियों के अवयवों की और उन की क्रियाओं की छानबीन करता है वैसे ज्ञानशास्त्र ज्ञान की आकृति और उस की क्रियाओं की छानबीन करता है। इस के साथ ही अनुभव पर आधारित अन्य शास्त्रों की भाँति वह अनुभव को अध्याहृत मानकर चलता है। अनुभव के मूल में जो अध्याहृत तत्व है, उस के किसी भी उद्गम में अतीन्द्रियता की कल्पना वह करके नहीं चलता। वह काम दर्शन करता है। उदाहरणार्थ इन्द्रियों के विषय क्यों और कैसे अद्भुत होते हैं, इन प्रश्नों का ज्ञान-शास्त्र विचार नहीं करता। यह वह मानकर चलता है। मेरे सामने जो हरे रंग का फलक है उस का अस्तित्व किस तत्व पर अवलम्बित है इस का विचार न करते हुए ज्ञान-शास्त्र केवल उस का अस्तित्व मानकर चलता है।'

डा० डब्ल्यू. टी. स्टेस के थियरी आफ नालेज एंड एक्ज़ीस्टेन्स का यह अवतरण पढ़कर उसने किताब मूँद दी।—

मान लिया कि वस्तुओं का अस्तित्व हम मानकर भी चलते हैं? तो उससे क्या? क्या समस्याएँ उस से सुलझ जाती हैं? परंतु........

उन की विचार-शृंखला टूट गयी जब एक निमंत्रण उन्हें मिला........

'ता० १० दिसम्बर को अनीता दे का विवाह दशरथ मित्र, रंगून के प्रसिद्ध लखपती के पुत्र के साथ निश्चित हुआ है। आप उत्सव में आकर शोभा प्रदान करें........

अमिय आगे नहीं पढ़ सका। वह कुछ और सोचता था। परन्तु......'

अविनाश

हेम ने अविनाश को उस रात सारी कथा सुनाई। हिचकियों का तार बँध गया था।

और अविनाश के मन में सेठ लक्ष्मीचन्द के प्रति घोर प्रतिहिंसा की अग्नि जल उठी! आदर्शवादियों के साथ जैसे होता है सामाजिक रोष संगठित, संयत, वैज्ञानिक रूप में व्यक्त न होकर व्यक्तिगत आतंकवादी कृत्यों में जा कर विस्फोट बनकर प्रकट होते हैं। वही अविनाश का भी हुआ। उसने निश्चय किया कि सेठ लक्ष्मीचन्द की वह हत्या करेगा।

परन्तु मन का निश्चय काफी नहीं होता। उसे पूर्ण करने के लिए चाहिये साहस, अथवा अविवेक....दोनों अविनाश में नहीं थे।

परिणाम यह हुआ कि एक रात को वह ऐसे हत्या के प्रयत्न में सेठजी द्वारा पकड़ा जाने वाला था कि वह भाग निकला और छिपने के यत्न में वह उस्ताद बाबूखाँ के यहाँ जाकर छिप गया। उस्ताद को सारी बात उसने कह सुनाई। उस रहमदिल संगीतकार ने उसे अपने यहाँ टिका लिया। पुलिस अविनाश को खोजती रही।

उस रात-भर अविनाश उस्ताद के घर एक बन्द कमरे में सोता रहा। पर नींद उसे नहीं आई। वह करवटें बदलता रहा। उधर उस्ताद के कमरे में से दरबारी के सुर दीवालों को हिलाते हुए अविनाश

के रोम-रंध्र प्राणों को झनझना रहे थे। पर आज वह उस आनन्द को ग्रहण करने की मनःस्थिति में नहीं था। कभी उसे झपकी-सी आ भी जाती तो उस में पुलिस की सीटी, कभी बड़ी-बड़ी जीप गाड़ियाँ, बन्दूकों का एक-सा गोलियाँ बरसाना, एक देहाती लड़की-सी गायक जो बीच में ही टूट गई हो, खून की धार, दर्शन के मोटे ग्रंथों के फुटनोट और उन पर फिर अन्त के परिशिष्टों में नोट......न जाने कितनी मिली-जुली दृश्यावलियां बनती और मिटती जाती थीं।

आदर्श का क्या अर्थ है यदि वह व्यक्ति तक सीमित है?

समाज अपने ही बेढंगे तरीके से चला जाय तो क्या लाभ?

व्यक्ति अपने आप में अक्षम है, परन्तु बहुत से व्यक्ति मिलकर वह गुणीभूत व्यंग क्या समाज हो जाता है?

क्या संख्या के साथ गुण आवश्यक रूप से, अनिवार्य रीति से बदलते ही हैं?

उस्ताद ने रात को एक बार झांककर देखा——अविनाश सो रहा था।

सवेरे उस के लिए न जाने क्या परोस रखा था?

ऐसे कई उत्सुक सवेरे उस के जीवन में आये हैं और आकर वे शाम में पलट गये हैं।

उस्ताद सोते वक्त प्रार्थना कर रहे थे, जिसका आशय था...... सब का मंगल हो। ओ सब को देखने वाले परवरदिगार......सब पर रहम कर। सब के पापों को भूल जा........

परंतु ईश्वर खुर्राटे तो नहीं भर रहा था, ऐसी शंका आस्तिक के मन में कब उठ पाती है?

अविनाश की मनःस्थिति कुछ ऐसी थी जैसे टी. एस. एलियट ने अपनी एक कविता में लिखा है:

When you are alone in the middle of the night
And you wake in a sweat and hell of a fright
When you are alone in the middle of the bed
And you wake like someone hit you on the head
You've had a cream of a nightmare dream and
you've got the hoo-has coming to you.
Hoo hoo hoo.
You dreamt you waked up at seven o'clock and
it's foggy and it's damp and it's dawn and it's
dark
And you wait for a knock and the turning of
a lock
For you know the hangman's waiting for you.
And perhaps you are alive
And perhaps you are dead
Hoo ha ha
Hoo hoo hoo......

हू-हू-हू तो सही, परंतु यह व्यक्तिगत अविनाश की ट्रैजेडी नहीं, सारे समाज के गतिरोध की समस्या थी। इसका हल भी व्यक्तिगत नहीं हो सकता। परंतु......